कर्ण धनुष रखता और द्रौपदी क्या आग्रह करती कर्ण में कौनसी बात की कमी थी परन्तु सूत के पालन करने से सूत जाति प्रसिद्ध होगई इत्यादि प्रमाणों से जन्म से ही वर्ण व्यवस्था सिद्ध होती है।

॥ मृत्युपश्चात् जीवन ॥

मिसेज एनी वेसन्ट का व्याख्यान जो महाराजा फरीद कोट के राजभवन में हुआ था,

जिसका अनुवाद।

सम्भलनिवासी श्यामलाल जोशी उपमन्त्री सनातन-धर्म सभा सम्भल से कराकर-

पं० बलदेवप्रसाद मिश्र मुरादाबाद निवासीने प्रकाशित किया।

महाराज साहब व मित्रगण !

आप का धन से क्या सम्बन्ध है ? आपका बान्धवों से क्या सम्बन्ध है ? आपका अपनी स्त्री से क्या सम्बन्ध है ? हे मनुष्य तेरी मृत्यु निश्चय है। उस कन्दरा विराजित जीवात्मा को खोजकर, आप के पिता और पर पिता कहां चलेगये ? यह वह प्रश्न है जिसको महर्षि वेदव्यास ने महर्षि शुकदेव से किया था और अनेक युगान्तरों से मनुष्य जाति में यह प्रश्न उठता रहा है मनुष्य के मनमें यह विचार कभी २ उठा करता है कि जीवन का क्या सुख है ? जगत के साधनों और बल पराक्रम कीर्ति से क्या प्रयोजन है ? यदि कभी यमराज हमारे हाथों से यह सुख छीन लेगा अतएव अनादिकाल से यह प्रश्न होता आया है कि जन्म और मृत्यु क्या पदार्थ है, हम इस संसार में आते हैं और चले जाते हैं। हम अल्प समय के लिये यहां हैं परन्तु प्रत्येक समय हम में परिवर्तन होता रहता है। जिस वस्तु को हम प्रिय समझते हैं और

जिस पर अपना चित्त लगाते हैं वही हमारे हाथों से यमराज छीन लेता है। समय आने पर स्वयं हम भी मृत्यु को प्राप्त होजाते हैं। संसार के सारे सन्देह युक्त विषयों में मृत्युही एक निस्सन्देह पदार्थ है। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को समझाया है कि "जातस्यहि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्यच" अर्थात् जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म निश्चय है यदि हम अपने आपको संसार में पाते हैं तो हम जानते हैं कि किसी समय हम संसार से अवश्य चले जावेंगे, हम नहीं जानते कि कब और किस अवस्था में हमारा शरीर छूट जावेगा। परन्तु एक समय ऐसा होगा कि कालदेव निश्चयही हमारा ग्रास करेंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

विशेष कर मनुष्य इस अवस्था से अपने नेत्रों को फेरलेता है। बहुधा मनुष्य अपने आनन्द के समय को ऐसी वार्ता के विचार करने में नष्ट करना नहीं चाहता, परन्तु यदा तदा जब मृत्यु किसी मनुष्य के घर में घुस जाती है अर्थात् किसी सम्बन्धी की मृत्यु होजाती है तब मृत्यु की ओर मनुष्य को अवश्य ध्यान करना पड़ता है। तब मनुष्य अपने हृदय में घृणा कर मृत्यु पर विचार करता है। कि यदि जीवन का निश्चयही नहीं है तो उसका आनन्दही क्या है?

ऐसी दशा में उसके हृदय में वैराग्य का संसर्ग होता है। जिससे उसको परिवर्तन शील पदार्थों से अरुचि होजाती है, और सांसारिक सुखों से दृष्टी फिरजाती है और उसके चित्त में उस अविनाशी अनादि परमात्मा की प्राप्ति की उत्कण्ठा होती है, जहां आशा निराशा की छाया भी नहीं पड़ती परन्तु यह यथार्थ वैराग्य नहीं है क्योंकि यह तो ऐसे समय में उत्पन्न होता है जब मनुष्य के सुखमार्ग को मृत्यु रोकलेती है अल्प समय के पश्चात् यह क्षणिक वैराग्य जाता रहता है, क्योंकि इस वैराग्य का प्रादुर्भाव जीवात्माकी वास्तविक उत्कण्ठा से नहीं होता। शुद्ध वैराग्य जिसका मनुष्य के चित्त में पूरा प्रभाव पड़ता है जब होता है जब मनुष्य की बुद्धि से प्रेरणा किये जीवात्मा को परमात्मा के प्राप्ति की लालसा होती है ऐसे वैराग्य का

बीज मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति में जड़ पकड़ता है इस वैराग्य का कभी नाश नहीं होता। फिर उसको ऐसा ज्ञान होता है कि संसार भर में एकही जीवात्मा है॥

यथार्थ ज्ञान के बिना सांसारिक पदार्थों की आशा निराशा से उत्पन्न हुआ वैराग्य निराशा के दूर होते ही अपना भयभीत रूप हटा लेता है, ऐसे वैराग्य के समय में जब कि जगत की अनूठी शोभा वैराग्य के बादलों से आच्छादित हो जाती है और संसारी सुख रुचकर प्रतीत नहीं होते मनुष्य को बड़े बड़े लाभकारी उपदेश मिलजाते हैं परन्तु जब बादल हटजाता है और जगत की शोभामयी माया अपना रूप दिखाती है ऐसी दशा का लाभ संकट के समय में उठाना चाहिये, जब अपने मित्रों और कुटुंबियों का वियोग मृत्यु द्वारा हो मनुष्यों को इस वैराग्य से लाभ उठाना चाहिये।

मनुष्य के चित्त में यह प्रश्न उठता है कि जीवन और मृत्यु क्या पदार्थ है? क्या हम मृत्यु के पश्चात् का वृत्तान्त जान सकते हैं। इस बात का तो हम को निश्चय है कि शरीर के नाश होने पर सब पदार्थों का नाश नहीं होजाता है। शरीर के पात होने पर हमारा नाश नहीं होता परन्तु मृत्यु के पश्चात् होता क्या है? यमराज से भेंट कर कर हमारी क्या दशा होती है और किन किन लोकों में हमें यात्रा करनी पड़ती हैं, कौन कौन पदार्थ मृत्यु लोक के हमको परलोक में प्राप्त होते हैं?

क्या कोई मनुष्य संसार में परलोक का वृत्तान्त बतला सकता है। क्या कोई मनुष्य संसार में अपने अनुभव से कह सकता है कि मरने वालों की क्या दशा होती है? कौनसी वस्तु उनको संसार में फिर जन्म दिलाती है। इस स्थूल मृत्यु लोक में मनुष्य के पुनर्जन्म का अधिकार किसको है? जन्म और मृत्यु का चक्र क्या है जन्म और मृत्यु का वह चक्र है जिससे हम बँधे हुए हैं। और जिससे हमारा छुटकारा नहीं होसकता और जिस चक्र में घूमते हुए हम और लोकों में चले जाते हैं और फिर लौट आते हैं। हमको तीन लोकों में यात्रा करनी पड़ती है इसी चक्र से जन्म और मृत्यु होतीहै। वह कौन सी शक्ति है जिसने जन्म और मृत्यु को इस

परिवर्तन शील चक्र म बद्ध कर दिया है क्या इस चक्र से छुटकारा पाना सम्भव है ? क्या हम उन बन्धनों को तोड़ने में समर्थ हैं, जिससे हम छुटकारा पासकें ? क्या कोई ऐसी स्थायी दशा भी है जिसको पाकर हमको पूर्णशान्ति और अनन्त सुख प्राप्त हो और जहां दुःख कुछ भी न हो ?

बारम्बार मनुष्य के हृदय में यह प्रश्न उठा करते हैं। आज की रात्रि के बिचार में इसी प्रश्न के उत्तर देने का मैं उद्योग करना चाहती हूँ और मैं देखना चाहती हूँ कि प्राचीन ऋषियों के सिद्धान्तों से यह प्रश्न समाधान होता है कि नहीं। प्राचीन ऋषियों के उपदेशों को प्राप्त किये हुए विद्वानों के विद्याबल से मैं आपके प्रश्न का उत्तर देना चाहती हूँ ।

हम लोग उस निश्चित अवस्था की खोज करना चाहते हैं, जिसमें रहकर मनुष्य बारम्बार जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है और किस प्रकार इस चक्र से छुटकारा पाकर उस अचल और अनन्त शान्त अवस्था को प्राप्त करता है ॥

पहिले हमको इस प्रश्न के प्रथम भाग अर्थात् जन्म और मृत्यु के चक्र पर विचार करना उचित है। यह प्रश्न अति आवश्यक है क्योंकि हम लोगों में से अधिकांश इस चक्र से निकलने में समर्थ नहीं हैं। पूर्ण मुक्त दशा को प्राप्त होने से पूर्व बहुत कुछ साधनों की आवश्यकता है और मुक्ति प्राप्त होने से पहिले हममें से बहुत लोगों को बहुत बार जन्म लेना है परन्तु इस बन्धन को तोड़ना और किस मार्ग पर हमको चलना चाहिये सो एक गूढवार्ता है।

मैंने अभी कहा है कि जीवन और मृत्यु के चक्र में मनुष्य को तीन-लोक में जाना पड़ता है, सबसे पहिले मृत्युलोक है परन्तु इसका वृत्तान्त लिखने की अधिक आवश्यकता नहीं क्योंकि इसलोक के वृत्तान्त को हम सब लोग जानते हैं परन्तु इस विषय में एक बात कहनी है जिसके कारण से मनुष्य इस चक्रसे नहीं बचते, हम सब सुख पाने की इच्छा

करते हैं और यदि आप इस पर विचार करें तो यह मनुष्य जन्म का एक परम सिद्धान्त भी है कि मनुष्य सदा सुख पाने की इच्छा करता है परन्तु इसको सन्तोष और शान्ति कभी नहीं होती। यदि वह किसी वस्तु को ग्रहण करता है और उसमें सुख नहीं पाता तो अपने मनमें कहता है कि मुझ से भूल हुई मैंने अविचार से उस वस्तु में सुख चाहा अब मैं दूसरे मार्ग से सुख पाने का उद्योग करूँ, तब वह उस मार्ग से लौटता है और फिर भी सुख पाने का विचार करता है। परन्तु उसके मन को किसी प्रकार से शान्ति नहीं होगी। यह स्वाभाविक बात है क्योंकि सुख पाने की इच्छा ईश्वर देता है परमेश्वर ही हमसे सुख प्राप्ति की इच्छा कराता है क्योंकि इसी चेष्टा के द्वारा हम उसको प्राप्त होसकते हैं। हम स्थूल पदार्थों में सुख प्रतीत करते हैं अर्थात् सांसारिक वस्तुओंको सुख पानेकी इच्छा करते हैं यह सारे जगत का अनुभव है। जिस समय इस शरीर को शान्ति नहीं मिलती है तब यह बड़े बड़े अधिकार चाहता है। यह लालची शरीर वस्तुओं की ओर दौड़नेवाला है इसको खान पान और स्त्री विषय के सुख की इच्छा होती है इस कारण सदा किसी न किसी वस्तु के ग्रहण करने का उद्योग किया करता है सब से पहिले मनुष्य शरीर में सुख पाना चाहता है इसका अधिकार इसके चित्त में बड़ा प्रबल होता है परन्तु यह नहीं समझता कि थोडे समय में यह इच्छा जाती रहेगी। अतएव अज्ञान से इसके प्रवेश को मार्ग देता है। जब उस को भोजन की इच्छा होती है वह लालच से अधिक भोजन की इच्छा करता है। जब उसको स्त्री विषय की इच्छा होती है तब भी वह अधिक ही चाहता है परन्तु परिणाम क्या होता है रुचि और अनेक रोग शरीर में उत्पन्न होजाते हैं। अतएव परमेश्वर जीवों को उपदेश करता है कि इन्द्रियों के विषय शान्ति वा शरीर में सुख पदार्थ वर्तमान नहीं है। इन्द्रियों के विषय से उसकी तृष्णा अधिक बढ़ती है। जितना अधिक वह पीता है उतनीही अधिक उसकी पीने की तृष्णा बढती है, जितना अधिक वह भोजन करता है, उतनीही अधिक उसको भोजन तृष्णा

बढ़ती है। ऐसेही जितना अधिक वह स्त्री विषय करता है उतनीही अधिक उसकी इच्छा बढती है। यह लिखा हुआ है कि अग्निपर घृत डालकर उसका बुझाना सहज है परन्तु प्रबल इन्द्रियों का दमन करना सम्भव नहीं। इस प्रकार कहीं सुख नहीं मिलता है, और ईश्वर हमको समझाता है कि "तुम्हारा सुख तुम्हारे शरीर में नहीं है, यदि तुम सुख की खोज शरीर में करोगे तो तुमको बारम्बार निराशा होगी। तुमको सुख प्राप्त नहीं होगा परन्तु तुम्हारा अधःपतन होगा" ॥

तब मनुष्य महान और अचल सुख के लिये मानसिक विचारों में उपयोग करता है परन्तु कभी क्लेश और दुःख आपडने से बुद्धि विचार का आनन्द जाता रहता है और फिर उसके मनमें विचार करने की सामर्थ्य नहीं रहती और यादि वह दुःख में भी वीरता से ऐसे विचार करता रहा तो बुढापा आजाता है जब उसके मस्तिष्क में शुद्ध विचार करने की सामर्थ्य नहीं रहती तबही मानसिक सुख का अन्त होजाता है। यद्यपि यह मानसिक सुख शारीरक सुख से बहुत उत्तम है।

इस प्रकार सब मार्गों से मनुष्य टक्कर खाकर लौटता है। स्वाभाविक रीति पर मनुष्य को परमात्म तत्व में सुख प्राप्ति की खोज होती है। यहही एक ऐसा सुख है जहां आशा निराशा घृणा अरुचि नहीं होती। यहही केवल ऐसा सुख है जहां विषय और रोग का संसर्ग नहीं, इस स्थान पर उसको ज्ञान होता है कि जीव और ब्रह्म एकही तत्व है और वह उस आनन्द अवस्था का भागी होता है जहां पर आनन्द और प्रेम का स्रोत है।

परन्तु अब हमको एक ऐसे मनुष्य की मृत्यु पर विचार करना चाहिये जिसने अपनी जीवित अवस्था में शारीरक सुख चाहा है जब मृत्यु से उसका शरीर नष्ट होजाता है तो वह फिर उस शरीर को अपने सुख भोगनेमें यन्त्र की भांति काम में नहीं लासकता। अब मैं आपको ठीक २ बतलाती हूँ, कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है? मैं दो दृष्टान्त लेती हूं, एक दृष्टान्त ऐसे मनुष्य का जिसने सारे सुखों को अपने शरीर में ही पाया है,

दूसरा ऐसे मनुष्य का जो सदाचारी और सन्तोषी है। और उसको मानसिक विचारों के अभ्यास में सुख होता है। अब देखना चाहिये कि मृत्यु के पश्चात् इन दोनों भिन्न मनुष्यों की क्या दशा होती है॥

दो लोकों में होकर इन मृत मनुष्यों को जाना पड़ेगा परन्तु इन दोनों मनुष्यों की दशा भिन्न २ होगी एक मनुष्य विषय सुख को लियेहुए शरीरकों छोड़ता है, पहिले उसकी अचेत दशा होती है और निद्रा आजाती है और शरीर के नष्ट होनेपर थोड़ी देरतक अचेत रहता है। जागने पर अपने आपको प्रेत लोक में पाता है यही लोक भूतों का लोक है और इसको काम लोक वा इच्छा लोक भी कहते हैं, जिस समय वह जागता है उसको प्रथम अपने विषय सुखों की याद आती है जिनको जीवित अवस्था में अपने विषय सुख की शान्ति के लिये पालन किया था, अब यह विचार इस समय भड़कते हैं, और अपने विषय की पूर्ती चाहते हैं। यदि उस मनुष्य को सुन्दर और स्वादिष्ट भोजन और पीने या स्त्री विषय का अभ्यास है तो यह कामना मृत मनुष्य को मृत्यु के पश्चात् जागने पर भड़कती है। परन्तु उसका सूक्ष्म शरीर ऐसा है जो उसकी इच्छाओं को शान्त करने में समर्थ नहीं है यदा तदा इस शरीर को बलिष्ट शरीर भी कहते हैं, क्योंकि यही शरीर जीवात्मा को बद्ध किये हुये है। वह कैदी की समान बन्दी गृह (Jail) में बद्ध है यह बन्दीगृह (Jail) जिसमें वह बद्ध है विषयों और कामनाओं का बना हुआ है मृत्यु लोक में उसने इन विषयों को भोग करने से इस शरीर को बलिष्ठ कर दिया है॥

इन विषयों का तुम्हारे स्थूल शरीर से कुछ सम्बन्ध नहीं है।यह स्थूल शरीर तो इन विषयों के भोगने का एक यन्त्र मात्र है। यह विषय कामनायें सूक्ष्म शरीर में होती हैं, इसही सूक्ष्म शरीर में इन विषय कामनाओंकी जड़ होती है और इसी स्थान पर इनके केन्द्र (Centre) हैं और यह स्थूल शरीर उनके भोगने का एकयन्त्र है इस यन्त्र में कर्मेन्द्रियां हैं जिनसे इन्द्रियों को भक्ष्य कराया जाता है। स्थूल शरीर इन इंद्रियों की इच्छा पूर्ती का एक यन्त्र है॥

इस प्रकार मृत्यु के पश्चात् ऐसे मनुष्यों की इन्द्रियां बड़ी बलवान होती हैं और जीवात्मा को बांध लेती हैं। उसको उन भोगों की इच्छा होती है जो उनसे मृत्युलोक में भोगे थे और भोगों के अभाव से इस समय उसको क्लेश होता है क्योंकि जिन भोगों को वह चाहता है वह मृत्युलोक से सम्बन्ध रखते हैं, और इसलोक में वह उनको भोग नहीं सकता। इस प्रकार उसको उन विषयों की इच्छा होती है, जिसको शान्त करने में वह समर्थ नहीं है॥

मृत्यु के पश्चात् यह दशा उन मनुष्यों की होती है जिन्हों ने मृत्यु लोक में अपनी इन्द्रियों से विषयों को भोगा है अन्त में भोगों का यन्त्र अर्थात् स्थूल शरीर नष्ट होजाता है। वह ठीक ऐसा है जैसे कि एक अत्यन्त भूखा मनुष्य किसी दृढ जगह पर बांध दिया जावे और एक भोजन की थाली उसके सामने रख दीजावे परन्तु बँधे होने के कारण वह भोजन तक नहीं पहुंच सकता उस मनुष्य की जिसने अपने जीवन को इद्रियों के विषय में व्यतीत किया है। अब इन्द्रियों के भोग का यन्त्र स्थूल शरीर मृत्यु द्वारा नष्ट होगया, अतः मृत्यु ऐसी असन्तोष युक्त बुरी दशा मनुष्य की मरने के पश्चात् होती है स्थूल शरीर को नष्ट करदेती है परन्तु इन्द्रियां वर्तमान रहती हैं। यदि किसी बुद्धिमान मनुष्य को इस बात का ज्ञान होजावे तो वह प्रेत लोक में ऐसी भाग्यहीन वा दुखदायी दशा को न भोगेगा। इस जीवन में आप मीठा होने परभी विषको नहीं खावेगा। आप मूर्खता से भी विष ग्रहण नहीं करेंगे। आप यही कहेंगे कि नहीं मैं ऐसी वस्तु को ग्रहण नहीं करूँगा जिससे अन्त में दुःख होवे तो आप इन्द्रियों को ऐसा क्यों बलिष्ठ करते हैं। जो मृत्यु के पश्चात् आपको प्रेत लोक में कष्ट दें जहां आपको भूखों मरना पड़ेगा क्योंकि वहां पर यह विषय आप नहीं भोग सकते॥

बारम्बार मनुष्य समुदाय में मैंने इस वृत्तान्त को समझाया है। मैं इन बातों को केवल इसी रीति पर नहीं जानती हूँ कि मैंने उनको धर्म ग्रन्थों में पठन किया है परन्तु मैं उसके देखने के योग्य भी हूँ

जैसा अभ्यास करने की मुझे शिक्षा दीगई है मनुष्यों को ऐसे क्लेश में देखते हुए मुझे बडा दुःख होता है और वास्तव में प्रत्येक मनुष्य को यह देखकर दुःख होगा कि मनुष्य उस बन्धन को नहीं तोड सकते कि जिसको उन्होंने स्वयं बनाया है। जो मनुष्य इन्द्रियों का विषय भोग करते हैं उनकी शरीर छूटने पर यह दशा होती है परन्तु प्रेतलोग में मृतक मनुष्य को मृतलोक के शरीरधारी निवासियों से भी कुछ सहायता मिलसकती है और मृतक श्राद्ध जिसके करने की आपको शिक्षा दीगई है यह प्रेतों की सहायता का उपाय है और इस सहायता से वह प्रेत उस बन्धन से छुटकारा पाकर स्वर्ग लोक को जासकते हैं। श्राद्ध में मन्त्रों का प्रयोग कियाजाता है जिनका प्रयोजन यह है सारे शब्दों से वायु में (Vibration) हरकत होती है और यह हरकत वायुसे टक्कर खाकर सूक्ष्म परिमाणुओं को इधर उधर छिन्न भिन्न करती है और यह हरकत शरीर से टक्कर खाकर उसके खण्ड खण्ड करदेती है। अब मैं आपको मृत्युलोक का एक उदाहरण भी सुनाती हूँ यदि आप एक समूह सैनिकों (Soldiers) का एक साथ आगे पीछे कदम ब कदम चलते हुए देखें इनके चलने से एक हरकत होगी और यदि यह सैनिक किसी जीर्ण पुल पर होकर जावेगा तो मैं साहससे कहती हूँ कि आप इस बात को जानते हैं कि सेनापति (Commander) उन मनुष्यों को आगे पीछे छितराकर चलने की आज्ञा देवेगा. क्यों? इस लिये कि यदि यह सेना इकट्ठी होकर क्रमानुसार चलेगी तो इसमें पुल के टूट जाने का भय है, कदम ब कदम क्रमानुसार चलने से जो हरकतें (Vibrations) होती हैं यह बड़ी बलिष्ठ होती हैं यह जिस वस्तु से टक्कर खाती हैं उसको तोड़ डालती हैं इस प्रकार पुलपर चलती हुई सेना को छितरा कर चलने की आज्ञा दीजावेगी।

मन्त्र भी बड़ी बलिष्ठ हरकतें (Vibrations) उत्पन्न करके जीवात्मा के बन्धक शरीर से टक्कर खाकर उसके खण्ड खण्ड करदेने का उपाय करते हैं इसी प्रयोजन से श्राद्धयज्ञ किया जाता है और मन्त्रों का उच्चा-

रण किया जाता है परन्तु इस यज्ञ को बड़ी सावधानी से करना चाहिये। पुरोहित विद्वान् और सदाचारी हो नहीं तो उसके मन्त्रों में कुछ सामर्थ्य नहीं होगा। दुराचारी और अपढ अर्थात् निरक्षर पुरोहित के मन्त्र उच्चारण में वह हरकत नहीं होती इस लिये मूर्ख पुरोहित से श्राद्ध कराना निरर्थक है और यदि आप विद्वान् और सदाचारी पुरोहित से श्राद्ध कराते हैं तो वास्तव में आप अपने मित्र और कुटुम्बियों की प्रेतलोक में बड़ी सेवा वा शुश्रूषा करते हैं इससे उनको उस बन्धन से छुटकारा पाने में सहायता मिलजावेगी।

अब तनिक उस मनुष्य की ओर भी ध्यान देना चाहिये जिसने इस मृत्यु लोक के जीवन में इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत्त नहीं किया है यह मनुष्य भी प्रेत लोक वा कामलोक को जाता है इस मनुष्य की क्या दशा होती है? अपने जीवन में ही इस मनुष्य ने इन्द्रयों को दमन कर विषय वासनाका नाश कर दिया है। उसका परिणाम यह होता है कि इस मनुष्य के बन्दीगृह (Jail) के बनने के लिये बहुत थोड़ा मसाला रहजाता है। जिस प्रकार कि आप कोई मकान बिना ईंटों और मिट्टी के नहीं बना सकते इसी प्रकार प्रेतलोक में आप का वासना रूपी शरीर नहीं बन सकता, यदि आप विषय वासना में वृप्रत्त नहों। सारांश यह है कि जितेन्द्रिय मनुष्य का सूक्ष्म प्रेत शरीर सुगमता से खण्डित होसकता है और वह शरीर बहुत शीघ्र स्वर्गधाम की यात्रा करसक्ता है वह मनुष्य प्रेतलोक में रोका नहीं जाता और बहुत शीघ्र वैकुण्ठधाम को गमन करता है, उसको वहां दुःख नहीं होता, क्योंकि उसका शरीर दुःख के बदले उसकी सहायता करता है और वह बिना किसी क्लेश और दुःख के आनन्द के साथ स्वर्गधाम वा सुखलोक में देवताओं के सत्सङ्ग से पूर्ण ज्ञान को प्राप्त होता है।

अब इस स्थान पर बुद्धि का काम पड़ता है जिस मनुष्य ने अपनी मानसिक शक्तियों को सूक्ष्म बिचार द्वारा शुद्ध किया है और मनुष्यों का बड़ा उपकार किया है और सदा दयावान और सदाचारी रहा है वह वहां

पर अपने सारे सत्कर्मों को अपनी बाट देखता हुआ पाता है। उसके सारे शुभ विचार और सत्कर्म उसके निकट आकर उस का ऐसा सुन्दर शरीर रचते हैं जिसको पाकर वह ब्रह्मलोक के सुखों को भोगता है उसके सारे सत्कर्म शुभ कामना और शुभ विचार उसके पूर्व जन्म के स्वर्गीय शरीर को रच देते हैं जिसके द्वारा वह देवलोक के सारे आनन्दों को भोगता है।

इस प्रकार का शरीर आपको बनाना चाहिए जिसको मृत्यु के पश्चात् आप धारण करसकें यह शरीर शुभ कामना सत्कर्म शुद्ध विचार और परोपकार करने से बनता है। आप विचार (Thought) की प्रबलता को नहीं जानते हैं जिस समय आप सुन्दर वस्तु विचार करते हैं तो आप एक सुन्दर शरीर रचते हैं जो जीवित अवस्था में आप के निकट रहता है और सन्मार्ग प्रवृत्त होने में सहायक होता है। प्रत्येक दिन कुछ थोड़ासा समय आप को सुन्दर विचारों में लगाना चाहिए। प्रातःकाल को नित्य कर्म करने के पश्चात् शुभ विचार और सुन्दर पदार्थों का ध्यान किया करो।

इस प्रकार आप ऐसा शरीर रचते हैं जो मृत्यु के पश्चात् आपको स्वर्ग में लेजाने के लिए बाट देखेगा, अपने नित्य ध्यान के लिये किसी सुन्दर विचार को अपने ध्यान में स्थिर करलो जिससे अन्त समय में यह विचार तुमको अपने लोकों में लेजावेंगे भगवद्गीता में आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण ने समझाया है कि जीवन में जिस वस्तु में मनुष्य की वासना होती है मरने पर उसी वस्तु के लोक को वह जाता है, स्वर्गीय शरीरको आप उतने समय तक धारण कर सकेंगे कि जितने दिनों वह ठहरेगा अर्थात् आपके सत्कर्मोंकी अवधि तक वह शरीर रहेगा जो आपने सत्कर्मों द्वारा बनाया है जितने अधिक आपने सत्कर्म किये हैं उतने अधिक समय तक आपका स्वर्गीय शरीर बना रहेगा और फिर नियमानुसार आप इसी लोक में आवेंगे जहां की आपकी वासना थी।

ऋषियों अर्थात् महात्माओं का कथन है कि यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है यह बात सत्य है। यदि कोई मनुष्य यज्ञ करे और वह स्वर्ग के सुखों को भोगे जो पदार्थ मनुष्य यज्ञ में अर्पण करता है वह पदार्थ उसको लौटकर मिलता है। मनुष्य गहने आभूषण और पृथ्वी और बड़े २ मकानों में रुपया खर्च करते हैं और उनको उसका कुछ पछतावा नहीं होता इन वस्तुओं से थोड़ी देर के लिए उनको सुख मिलजाता है परन्तु जिस समय यह सुख जाता रहा फिर कुछ नहीं रहता। परन्तु जो पदार्थ मनुष्य ईश्वर के निमित्त अर्पण करता है उसका उसको पछतावा होता है देवता मनुष्य से यज्ञ दान चाहते हैं। वे ऐसा दान चाहते हैं जिससे औरों-का भी उपकार हो। कूपों का बनवाना वृक्ष लगाना और मनुष्यों का उपकार करना और फिर देवता लोग जो न्यायकारी है इस स्वर्गीय शरीर में उसको वह पदार्थ पहुँचाते हैं यदि मनुष्य अधिक दान करेगा उस क स्वर्गीय शरीर भी अधिक दिनों तक रहेगा।

यह नियम है कि मनुष्य उस स्थान पर जन्म लेगा जहां उसके वांछित पदार्थ वर्तमान होते हैं।

एक उपनिषद् में ऐसा लिखा है कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार एक लोक से दूसरे लोक में जाता है। अधिकतर मनुष्यकी इच्छायें स्थूल मृत्युलोक से सम्बन्ध रखती हैं इसीलिए वह शीघ्रही मृत्यु लोकमें जन्म लेता है।

तीन कारणों से पुनर्जन्म की इच्छा और पूर्वजन्म के विचार मैंने आप को बतलाए हैं कि इन बातों का काम, काम लोक तथा स्वर्ग लोक में किस प्रकार पड़ता है। कुछ कर्मों का फल तो इन दो परलोकों में भोग-लेता है और शेष कर्मों के निमित्त पुनर्जन्म होता है।

जब मनुष्य का पुनर्जन्म होता है उसकी प्रकृति उसके पूर्वजन्म के विचारों के अनुसार बनती है जो उसके जन्मका मूल कारण है।

आप जानते हैं कि जन्म के समय मनुष्य भिन्न २ प्रकृति के होते हैं। दो बच्चे भिन्न २ प्रकृति लिए हुए जन्म लेते हैं। एक बच्चे को आप लालची

पावेंगे किसी बच्चे को आप स्वार्थी प्रकृति पावेंगे और कोई बच्चा बहुतही क्रोधी होगा। कोई बच्चा प्रेमी होता है और कोई बिलकुल कमी और रूखी प्रकृति होता है। यद्यपि यह सब बच्चेही हैं परन्तु प्रकृतियां भिन्न २ हैं। यह उनके स्वभाव उनके पूर्वजन्म के संस्कारों से हैं।

आप जानते हैं कि कितना अधिक मनुष्य का सुख उसके स्वभाव वा प्रकृति पर निर्भर करता है यदि कोई मनुष्य सदाचारी और साधु स्वभाव नहीं है तो वह चाहे धनवान वा राजा क्यों न हो उसको सुख नहीं होगा॥

तो आपका स्वभाव आपके विचारों से बनता है जैसा आप ध्यान करेंगे वैसेही आप बन जावेंगे। छान्दोग्य उपनिषद का वाक्य है कि मनुष्य की उत्पत्ति उसके विचारों से होती है। जैसा मनुष्य विचार करेगा वैसा ही बनजावेगा। विचारों से केवल स्वर्गीय शरीर ही नहीं बनता है। परन्तु तुम्हारा स्वभाव भी उसी से बनता है यदि तुम साधुत्व का विचार करोगे शुद्ध स्वभाव धारण कर जन्म लोगे। यदि कुत्सित प्रकृति का ध्यान करोगे तुम्हारा कुत्सित स्वभाव के साथ जन्म होगा। यह वह नियम (Law) है जिसमें परिवर्तन नहीं होसकता॥

दूसरी वस्तु आपकी इच्छायें हैं आपकी इच्छाओं से यह स्थिर होजाता है कि कौन २ पदार्थ आपको आगामी जन्म में प्राप्त होंगे। यदि आपको रुपये का बहुत कुछ ध्यान है तो आपको आगामी जन्म में धन मिलेगा परन्तु सोचिये कि कौनसा पदार्थ ग्रहण करने योग्य है। बहुत धन और उच्च पदों से ही केवल सुख प्राप्त नहीं होता है। अब मैं आपको एक ऐसे मनुष्य का दृष्टान्त सुनाती हूँ जिसकी अवस्था आश्चर्य जनक थी। वह मनुष्य बडा धनहीन था उसने ठेकेदारी का काम किया और बडा धनवान होगया। जो काम उसने किया उसमें सफलता प्राप्त की इस प्रकार उसने लाखों करोडों रुपये संग्रह कर लिये और एक बडा सुन्दर भवन बनवाया व उसको खूब सजाया परन्तु ऐसा सुन्दर भवन होने पर भी उसने उसमें निवास नहीं किया वह बडे क्लेश में रहता था और दरिद्री रहता था. उसके बच्चे बेपरवाह थे उसकी स्त्री मरगई थी और उसके कुटुम्बी उससे

घृणा करते थे इतने बडे धन कुबेर होने पर भी वह दुःखी रहता था वह एक छोटी सी झोपडी में रहता था और उसके पास एक नौकर था, और वह भी रोगी था, अब इसके पूर्वजन्म की अवस्था विचारने योग्य है, उस मनुष्य की रुचि सदा रुपये में रहती होगी काम के अटल नियमानुसार उसको धन मिला उसकी पूर्वजन्म की अवस्था बहुतही क्लेश जनक थी। वह बहुतही स्वार्थी और लालची था और उसको धन भी मिला परन्तु भलीभांति भोग न सका। इस जीवन का परिणाम यह हुआ कि उसको धन मिला परन्तु इसपर भी उसको क्लेश रहता था ॥

अब कर्म फल को विचारिये यदि इस जीवन में इस संसार में आप औरोंको शारीरक सुख देंवगे तो पूर्वजन्म मे आपको शारीरक सुख मिलेगा यदि आप अपने निकटस्थ को धन प्रदान करेंगे तो आपको भी धन मिलेगा यदि आप दूसरे मनुष्यों को सुख देंगे तो आपका स्वयं परिश्रम करना चाहिये। कल्पना कीजिये कि कोई धनवान मनुष्य सर्व साधारण के लिये एक वाटिका (Park) बनवाता है यह बहुत अच्छी बात है क्योंकि इससे मनुष्यों को बहुत कुछ सुख मिलता है वहां पर उनको ताजी हवा अर्थात अच्छी वायु मिलती है बैठने के लिये वृक्षों की छाया मिलती है यह शारीरक सुख उसको लौट कर मिलेगा जो सत्कर्मों का और उपकारों का बीज उसने बोया है वह उसको लौटकर मिलेंगे परन्तु यदि उसको आत्मिक सुख के करने की अभिलाषा है तो उसको निष्काम दृष्टिसे कर्म करने चाहिए।उसको निष्काम बुद्धि से दूसरों का उपकार करना चाहिये॥

यह निष्कामत्व उसकी प्रकृति में मिलजावेगा, और उसको सुखी बनावेगा। मनुष्य को अपने कर्मों और स्वभाव दोनों का ध्यान रखना चाहिये, परन्तु अपने कर्मों को भूलना नहीं चाहिये। यदि कोई मनुष्य किसी के साथ अन्याय करता है तो वह अन्याय लौटकर कर्म शास्त्र के अनुसार उसको मिलता है ॥

यादि बल को उचित रीति से काम में नहीं लाया जाता है यदि इस बल को दूसरों के कष्ट पहुंचाने में बरता जाता है तो ऐसा अन्यायी राजा आगामी जन्म में कष्ट भोगेगा अर्थात् उस बीज के फल काटेगा

जो उसने स्वयं बोया है यह कर्मशास्त्र का नियम है। जिसके द्वारा मनुष्य को उसके कर्मों का फल मिलता है और उसकी सामर्थ्य के अनुसार उसपर जिम्मेदारी का बोझ है।

परमेश्वर मनुष्यों को उच्च अधिकार देता है और उनको जगत अपना प्रतिनिधि रूप बनाकर भेजता है हिन्दू शास्त्रों में यह उपदेश दिया गया है कि राजा ईश्वर का रूप होता है। जैसा कि भगवद्गीता में कहागया है कि "नराणांच नराधिपः" और राजों में ईश्वरीयशक्ति होती है। उनमें ईश्वरीय शक्तियां और उसकी मान प्रतिष्ठा ईश्वर समान की जाती है। और उसके बदले में उसको रक्षा करना, न्याय करना, धनवानों से दीनों की रक्षा करना, और बलवानों से निर्बलों की रक्षा करना, उचित है। निर्बलों की रक्षा उसमें मिलती है क्योंकि महाभारत में ऐसा लिखा है कि दीन दुःखी मनुष्य के आंसू बड़े २ बलवानों की शक्ति को नाश कर सकते हैं। परमेश्वर सारे संसार के भूपतियों का राजा है। वह इन भूपों के अन्याय व कानूनी बेपरवाइयोंका हिसाब मांगता है प्रत्येक शक्ति को महाशक्ति का स्मरण रखना चाहिये, जिसके सन्मुख उनको हिसाब देना है। जीवन और मृत्यु का नियम यही है। इसी चक्र में जीवात्मा को घूमना पड़ता है॥

इस चक्र के विषय में एक बात कहना और है जिससे छुटकारा नहीं पासकता। हमको इस चक्रमें घूमने और बारम्बार जन्मलेने और शरीर त्यागने की आवश्यकता नहीं। हम इससे थक गये और छुटकारा चाहते हैं। ऐसे समय पर हम मुक्ति मार्ग की खोज करते हैं। आपको नाचकेत की कथा याद होगी जब उसका पिता हवन कर रहा था पुत्र ने पूछा पिता तुम मुझको किसकी भेंट करोगे? पिता ने उत्तर दिया कि बेटे मैं तुझे यमराज की भेंट करूंगा इसलिए वह यमराज के लोक को गया और बिला आदर सत्कार पाये तीन दिन और तीन रात खड़ा रहा। जब यमराज लौटे उन्होंने नाचकेत को अपने पिता की आज्ञानुसार बाट देखता हुआ पाया। उसके आदर सत्कार के बदले में यमराज

ने उसको तीन बरदान दिए। पहिला बरदान नाचकेत ने यह मांगा कि मेरा पिता मुझसे प्रसन्न होजावे, दूसरा वर यह मांगा कि स्वर्ग की अग्नि मुझको प्राप्त होजावे और मेरे नाम से पुकारी जावे, तीसरा बरदान उसने यह मांगा कि मृत्यु का गुप्त भेद जानूँ, बहुत मनुष्य कहते हैं कि मनुष्य अमर है कुछ कहते हैं कि वह अमर नहीं है इसलिए हे यमराज! अपने गुप्त रहस्य को प्रकट कीजिये—क्या मनुष्य आप से बच सकता है? यमराज ने कहा हे पुत्र! इसको न पूछ सिवाय इसके और कोई वरदान मांग मैं तुझको संसार का धन और सब प्रकार के सुख देसकता हूँ परन्तु मृत्यु का भेद नहीं बतलाऊँगा। लड़के ने कहा कि आप संसार के सुख और स्वर्गलोक के भोग स्वर्ग की अप्सरा रहने दीजिए इनके बदले मुझे केवल वही बरदान दो कि ऐसा क्या उपाय है कि मनुष्य काल का ग्रास न बने इस प्रकार नाचकेत के बारम्बार प्रश्न करने पर यमराज मृत्यु का भेद बतलाने को विवश हुए मनुष्य का बन्धन बासना है। यह बासनायें वा इच्छायें इन्द्रियों से उत्पन्न होती हैं और यही बारम्बार जन्म मृत्युकी कारण हैं। मनुष्य को इन्द्रियों का दमन करना चाहिए सब से पहिले इसी मार्ग को ग्रहण करना उचित है। सब से पहिला यही काम है। जैसे कि इन्द्रियां मनुष्य को जन्म और मृत्यु में बांधती हैं प्रथम इनको दमन करके अधिकार में लाना चाहिए यह शरीर रथ के समान है इन्द्रियां अश्व रूप हैं। मन उसकी बागें हैं। बुद्धि सारथी है। जीवात्मा इस सारथी से ऊपर रथ में बिराजमान है। बुद्धिरूपी सारथी के मनरूपी बाग को पकड़ कर इन्द्रियरूपी घोड़ों को रोके हुए जो अपनी विषयी वस्तु की तरफ दौड़ते हुए जाते हैं इस शरीर रूपी रथ को हांके। इन घोड़ों को सत्मार्ग में हांकना चाहिए। अर्थात् इन इन्द्रियों को सत् मार्ग में प्रवृत्त करना चाहिए बुद्धि द्वारा मन को अधिकार में लाना चाहिये जिस प्रकार कि इन्द्रियों को मन के अधिकार में लावे। प्रत्येक कार्य्य में मन और इन्द्रियों को अधिकार में लाना उचित है। इन मार्गों में प्रवृत्त होने

से मन की शान्ति पर जीवात्मा के दर्शन होते हैं । तब योग विद्या सीखनी चाहिए । इस हृदय रूपी गुफा में उस अनादि आत्माका ध्यान करना उचित है । यह आत्मा इस हृदय मन्दिर में बिराजती हैं और जिज्ञासु उस पर ध्यान को स्थिर करे । इस हृदय मन्दिर में उस पुरुषतत्व का ध्यान करना चाहिये । आत्माके लक्ष्य करनेवाले मन को शुद्ध निर्भय स्थिर रखना चाहिए इसके अनन्तर ज्ञान और भक्ति को प्राप्त करना चाहिये क्यों कि भक्ति द्वारा ही जीवात्मा की एकता का लक्ष्य होता है । इस प्रकार मनुष्य कालको जीत सकता है जब सब इच्छाओं का नाश होजाता है तब मन अमर होजाता है । जिस समय मन को परमात्मा के दर्शन होजाते हैं वह फिर कालका ग्रास नहीं बनता ।

यह गुप्त भेद बतलाया गया, मोक्ष की प्राप्ति का केवल यही एक गुप्त रहस्य था जो कहा जा सकता है । हम इसको किस प्रकार प्राप्त हों वा सीख अब भी उपदेश गुरु वर्त्तमान है और यमराज कहते हैं कि सतगुरु की खोज करो और उनकी सेवा करो वे अब भी संसार में जीवित हैं और संसार में उपदेश करते हैं और जो मनुष्य सीखना चाहते हैं उन को खोज करते हैं जैसा मैं जानती हूँ वैसा आपको बतलाती हूं वे उसी सूक्ष्म मार्ग का उपदेश करते हैं जो अब भी खुला हुआ है । यह मार्ग ज्ञान द्वारा प्राप्त होता है । परन्तु यदि गुरु प्राप्त होजावे तो शिष्य को भी शिष्यही के समान हो जाना चाहिये । इस प्रकार आप सत्य ज्ञान को प्राप्त हो सकते हैं । परन्तु स्मरण रहे कि आत्मा की प्राप्ति इन्द्रियों के विषयों से नहीं होती । तर्क वितर्क और वादानुवाद से उसकी प्राप्ति नहीं होती जीवात्मा अपने अधिकारी को ही दर्शन देता है और यह अधिकार शुद्ध स्वभाव और निष्कामतासे प्राप्त होता है ॥

इति ।

॥ सम्प्रदाय भेद क्यों ? ॥

लीजिये ! अब यह प्रश्न आया कि "सम्प्रदाय भेद क्यों ?" जो यह पूछता है जान पड़ता है, कि उसे मूर्ति पूजा पर तो कोई आपत्ति नहीं उसे केवल इतनाही पूछना है कि यह कै एक भिन्न २ प्रकार से क्यों होता है ? यह भी पूछने वाले की मन की बात प्रगट होती है कि [क] "भगवत्प्राप्ति का मार्ग एकही प्रकार सब के लिये चाहिये" और कदाचित् पूछने वाले ने (ख) सम्प्रदाय भेद के कारण कुछ हानि भी समझी हो ॥

(क) अच्छा तो यह जो भाव झलका कि "सब के लिये एकही प्रकार चाहिये भिन्न २ क्यों ?" इसी को कुछ देखिये, क्योंकि हमारे मुसलमान, क्रिस्तान, ब्राह्म, और आर्या भी इसी बात का झगड़ा उठाते हैं सब के लिये एक और एकही प्रकार का धर्म्म हो क्योंकि जब सबका भगवत्प्राप्ति रूप एकही उद्देश्य है तब एक प्रकार क्यों न हो ? इसकी समालोचना में पहले यही देखिये कि (१) यदि एकही उद्देश्य हो तो एकही प्रकार होना अत्यावश्यक है कि नहीं और फिर यह भी देखेंगे कि (२) सब हिन्दू मुसलमान क्रिस्तान बौद्ध ब्राह्मो आदि का एकही उद्देश्य है कि नहीं (३) फिर आप लोगों की दृष्टि इधर भी फेरेंगे कि सब एक प्रकार से चले यह सम्भव है कि नहीं ?

[१] देखिये तो क्या बच्चों की सी बात है कि एक उद्देश्य हो तो एकही प्रकार उपाय भी होना चाहिये। देखिये न तो इसकी कोई प्रबल युक्तिही है और न ऐसा व्यवहारही देखते हैं प्रत्युत संसार की प्रकृतिही इससे उलटी देखते हैं। देखिये भूख लगने पर कुछ भोजन कर उसे शान्त करना यह उद्देश्य सब का एक है। पर इसके पूरे करने के भिन्न व्यापार हैं, कहीं रोज पूरियें छन्ती हैं, कहीं प्रति दिन भात पसाया जाता है, कहीं लड्डुए ढलते हैं और कहीं चूडे सांदे जाते हैं, कहिये तो यह प्रकार भेद क्यों ? शीत वातादि के निवारण के लिये वस्त्र धारण

करना यह एक उद्देश्य है, फिर कहीं मखमल, कहीं छींट, कहीं पगड़ी, कहीं टोपी, इत्यादि सहस्रों प्रकार क्यों ! ! और उनमें भी एक एक पगडी, आदि के सहस्रों प्रकार क्यों ! ! यदि एक उद्देश्य से एकही प्रकार से कार्य सम्पादन किया जाय तब तो घर बिछौने ओढने पलङ्ग, मचिया, खटिया, आदि सब पदार्थ एकही एक प्रकार के होने चाहिए । और आज कल के विज्ञों के समाज में तो उसका उलटाही सिद्धान्त देखते हैं, वे तो एक उद्देश्य के एक पदार्थ को सहस्रों प्रकार से सिद्ध करनाही अपनी विद्या की सफलता समझते हैं, और तो जहां तहां पेन्सिल, कलम, स्याही, और कागज के प्रकारके हैं । क्या एक प्रकार की बोताम से कुर्ता नहीं अटक सक्ता ? क्या एकही ढङ्ग की चेन से घड़ी नहीं झूल सक्ती ? और क्या एकही प्रकार की छींट से अंग नहीं ढपसक्ता ? पर नहीं ! आज कल के विद्वान् लोग इसी बात को विद्या की पराकाष्ठा समझते हैं कि एक काम सैकड़ों रीति से हो, और इसी बात पर लोग अपनी अपनी चतुराई और विद्या झाड़ते हैं कि हम और एक नया ढंग निकालें ? अच्छा कुछ गान की ओर तो ध्यान दीजिये, गान विद्या की मूलकारिका तो इतनी ही हैं कि एक किसी प्रधान रीति से कुछ नियत स्वरों पर आरोह अवरोह करते रहना, पर गाने बजाने वालों की प्रशंसा इसी बात में है कि वे नये२ ढंग से आवें । जो सितारिया एक ही गत को घण्टों तक बजावे और बार२ नईही नई तानें निकाले उसी की अधिक वाह २ होती है यह बात तो अशिक्षित जंगलियों में है कि वे प्रायः एकही प्रकार के झोंपड़े बनाते हैं और एकही प्रकार से धोती मुरेठा लपेटते हैं अथवा यह बात पशु पक्षियों में है कि वे एकही प्रकार के व्यापार से जन्म बिताते हैं और एकही प्रकारके खोते बनाते हैं । तब जहां के निवासियों ने थोडे समय से पढना लिखना सीखा है और थोडेही दिनों से मनुष्यता पाई है वे यदि ईश्वर पाने के शास्त्र की उन्नति न करसके हों और एकही मोटे से पथ को मोक्ष पथ कह के मान छोड़ा होतो हो ! पर जिन भारत निवासियों ने और शास्त्रों को भी भगवत्प्राप्तिही में सहायक समझ आदर किया और उपासना

के शास्त्र को अन्तदर्जे तक पहुंचा दिया उनका उसी उद्देश्य के साधन के अनेक पथ निकालना क्या बुरा है ?

यदि एक उद्देश्य से एकही उपाय ठीक समझा जाता तो, वैद्य, कविराज, हकीम, और डाक्टर लोग एक २ रोग की एकही एक दवा रखते, पर कहिये तो यह कहां की युक्ति है कि एक साधारण ज्वर की तो दस दस पन्द्रह२ बीस२ प्रकार की दवाइयां होसकें और इस संसार के जन्म मरण के महाज्वर की मोटी मोटी एकही दवा हो और उसका एकही अनुपान हो ! और यदि उस दवा के सेवन का भी किसी ने भिन्न २ अनुपान और प्रकार निकाला तो नवीन समाजी लोगों को सन्देह ज्वरका सन्निपात हुआ?

[२] और यह ही आपने क्योंकर समझा कि सब का एकही उद्देश्य है? कोई स्वर्ग चाहते हैं कोई सायुज्य चाहते हैं, कोई सालोक्य चाहते हैं कोई कैङ्कर्य चाहते हैं। कोई सांसारिक पुरुष इतनी ही मेहरबानी चाहते हैं कि इनसाफ़ के दिन कुसूरमुआफ हो, कोई चाहते हैं कि ईसा ने जो सब के बदले सजा पाली है इस लिये हमें छुडादे, कोई चाहते हैं कि देह त्याग के अनन्तर हम वासना रहित शुद्ध चेतन रहजायँ, कोई चाहते हैं कि हम तो ब्रह्मरूप हैं ही पर जिस अज्ञान बन्धन से हम जीव कहला गये वह बन्धन किसी प्रकार छूट जाय इत्यादि सैकड़ों उद्देश्य भिन्न २ कहां तक गिनाये जांय फिर जब एक एक प्रकार के उद्देश्य साधन के लिये अनेकानेक उपाय हो सक्ते हैं तो अनेक उद्देश्यों के लिये तो भला कितने उपाय होंगे?

अच्छा अब यह ही देखिए कि सब एकही प्रकार से चलें तो यह कहां तक सम्भव है। और लम्बे २ बडे २ द्वीपों में कुछ सम्भव हो तो हो भी पर क्या भारतवर्ष में भी सब प्रान्त और सब वर्णों का सामान्य भाव संभव है ? यह वह भारतवर्ष है जिसके मारवाड़ देश में आफ्रिका का मजा धूल खाता है कश्मीर की ठंड पर यूरप की ठंड भी ठण्डी होजाती है, और वनस्पतियों की शोभा पर काबुल के अनारों की छाती फटती है, और छुहारे छिछोरे पडी सकुडे जाते हैं, इस भारतवर्ष में एक प्रान्त ऐसा भी है जहां ४०० हाथ गहरे कुवें में पानी का दर्शन हो और एक प्रान्त ऐसा

भी है जहां डुपट्टे में लोटा बांध पानी निकाल लीजिए एक प्रान्त ऐसा भी जहां चारों ओर पहाड़ और घोर जंगल की घूम से एक कोस भी सरल भूमि नहीं है और जहां कि पर्वत के ऊपर की बस्तियों में ऐसे हजारों बुड्ढे रहा करते हैं जो कभी पहाड़ से नीचे उतरे ही नहीं, और इस भारत में कोई प्रान्त ऐसे भी हैं जहां के लड़के पुस्तकों में पहाडों का नाम पाते हैं पर पहाड देखने को तरसा करते हैं। इस भारत में थोडी २ दूर पर बोली बदलती है, वेष बदलते हैं, और व्यवहार बदलते हैं जिन्होंने भारत के अनेक भिन्न भिन्न प्रान्तों में सभा की होंगी उन्होंने देखा होगा कि पञ्जाब की सभाओं में लम्बे २ चोगे और घनी डाढी वाले ऐसे पचहत्थे ज्वान जुटते हैं कि उनके सफेद २ भारी २ मुरेठों की ऐसी कतारें बँधती हैं जैसे, किसी तड़ाग के उपवन में हजारों हंस इकट्ठे हुए हैं? राजपूताने की सभाओं में रङ्ग बिरङ्गी पगड़ी कसे गले में बलेवाड़ा झुलाये तुर्रा झुमाते ढीला पेच डुलाते छूँछां करते, ऐसे छैल छबीले जमते हैं कि मानो किसी बगीचे में विचित्र वसन्त ऋतु आया हो जिससे सहस्रों फूलों के रङ्ग बिरंगे गुच्छों से सब पौदे लद फद होगए हैं। अब कुछ बङ्गदेश की ओर दृष्टि दीजिये तो वहां की सभाओं में जिन्हें देखने से दयाका उद्वेग हो ऐसे कोमल कोमल अङ्ग वाले छोटे कुरुते और लम्बी धोती वाले बाबू लोग इकट्ठे होते हैं उनके चिकने २ घुंघरारे कारे२ केशवाले उघाड़े मस्तकों से सभा एकदम श्रीकृष्णमय होजाती है और ऐसी सभा दीख पड़ती है कि मानों किसी खिले हुए रङ्ग बिरङ्ग कमलों से भरे तालाब पर करोड़ों भौंरों के झुण्ड आपड़े हों, उनके सब कमल ढप-गये हों, ! तो क्या ऐसे भारत में सम्भव है कि सब एकही प्रकार चलें और केवल देश भेद क्या ? जाति भेद, वर्ण भेद, आश्रम भेद आदि के कारण से भी क्या अधिकारी एक प्रकार के ठहर सकते हैं। इत्यलम्.

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ धैर्य्य ॥

यह भी मनुष्य में एक बिलक्षण गुण है। जितने काम हैं वे धीरज ही से अच्छे होते हैं। चपल पुरुष से प्रायः काम बिगड़ते हैं। जिसको धैर्य्य नहीं वह थोडी ही बात में घबरा जाता है और घबराने के कारण फिर उसको वह विवेक नहीं रहता कि क्या हमारा कर्तव्य है और क्या नहीं, तब फिर बिना विचारे और बिना समझे चाहि जो कर गुजरता है तो यह कब सम्भव है कि इस प्रकार के काम ठीक ही उतरें। ऐसा प्रसिद्ध है कि—

बिना बिचारे जो करै, सो पाछे पछताय।
काम बिगारै आपनो, जगमें होत हँसाय॥

जो लोग थोडी ही सी घबड़ाहट में अपने से बाहर हो रोते हैं आदमी२ के पांव पडते हैं, तथा सन्देह और चिन्ता के ज्वर से ज्वरित होते हैं उनसे अधिक और कौन दुःखी होगा? इसलिए सदा धीरज ही धरना चाहिए।

॥ कवित्त ॥

कैसे काज ह्वै है सब बात सब बूड़ि जैहै, कादरता ऐसी कबो भूलि हू न करिये। करिके विवेक को समाज निज जो में पचि रचि कैं उपाय निज ब्याकुलाई हरिये॥ ईश्वर को याद कै जनैये पुरुषारथ की, दच्छ कहै काहू के न जाय पांय परिये। हारिये न हिम्मत सु कीजै कोरि किम्मत को, आपति में पति राखि धीरज को धरिये॥

इस संसार में ऐसे क्षुद्र अनेक हैं, जो कुछ शोक उपस्थित होने से घबरा-के कुएँ में गिर के प्राण दे देते हैं अथवा और किसी प्रकार से आत्मघात कर लेते हैं, अथवा कितनेही आग लगी देख घबरा के घर के कोने में बैठ जाते हैं और निकलने का रास्ता भूल प्राण देते हैं, कितनेही जङ्गल में शेर और भालु का नाम सुनतेही काठ हो खिलौने से खड़े होजाते हैं और

उन्हें अन्य पशु भोजन करते हैं, कितनेही घबरांय पथिकों के समूह अल्प सामर्थ्यवाले तीन चार डाकू लूट लेते हैं और वे विचारे धीरज विहीन हो आपस में एक दूसरे को धरते पकड़ते रोते हा हा करते लुट जांते हैं। धैर्य-के छोड़ देने से कितने अनर्थ होते हैं जो कहे नहीं जासकते। देखिए धीर और अधीर का कितना अन्तर होता है एक धीर पुरुष को दूसरे सिंह को देखतेही दस्त होजातेही हैं और दूसरा धीर पुरुष जब तक सिंह लपक के अपने पास आवे तब तक एक गोली भर के उसे मारते हैं॥

किसी एक पुरुष ने सिंह का बच्चा पाला और सदा उसपर हाथ फेरता प्यार करता अपने साथ रखता उससे ऐसा हिलमिल गया था कि उस सिंहके बच्चे को कुत्ता सा बना लिया था। धीरे २ वह सिंह का बच्चा बड़ा हो पूरा जवान सिंह हुआ। पर तो भी उस सिंह का अपने स्वामी पर वैसाही प्रेम था मानो उस सिंह को यह ज्ञानही न था कि यह स्वामी भी वैसेही रुधिर मांस का पिंड है जैसा मैं प्रति दिन बड़े प्रेम से खाता हूँ। वह सिंह अपने स्वामी को दूर से देखतेही दौड के आता और पूँछ सटका पांव चाटने लगता उसके पीछे २ फिरता और हर बात में प्यार की आंख से देखता था।

एक समय एक कुरसी पर उसका स्वामी बैठा था और हाथ में एक छोटी सी किताब लिये पढ रहा था भोरका समय था, ठण्डी हवा चल-रही थी। सामने बगीचे के हरएक पौधां के पत्ते ओस की छोटी बूँदों-का बोझा उठा रहे थे, कुन्द और सदा गुलाब की सुगन्ध से आकाश भी प्रसन्न दीख पड़ता था। इतनी देर में सामने का पिंजरा उसकी आज्ञा से खोलागया और सिंह भी पूँछ हिलाता उसके पास आया। उसके स्वामी ने पहिले उसके शिर पर हाथ फेरा फिर पुचकार पुचकार गर्दन झाड़ अपनी बांई ओर बैठाया वह भी उवासी ले कुछ बांई ओर-से कुछ पीछे तक कुरसी घेरता हुवा बैठगया।

उसका स्वामी किताब पढता जाता था कभी कभी अपने पाले हुवे, शेर के बच्चे को देखता और कभी बांयां हाथ उसके कान और शिर पर

फेरता और कभी उसकी ओर अपने को देख, चारों ओर इस भाव की आंख पसारता कि "मेरे ऐसा संसार में और ऐसा कौन है, जिस सिंह का नाम सुनते लोगों को दस्त होता है वही मेरे साथ बकरी की भांति पूँछ हिलाता दौड़ता है। किसकी सामर्थ्य है कि ऐसे समय मेरे सामने आवे मैं अँगुलीसे भी इशारा करूँ तो यह बड़े २ गजराजों का भी कुम्भ-स्थल व अस्थि चीर डाले और रुधिर की नदी बहादे" इन्हीं घमण्डों में भर इधर उधर देख भाल वह फिर अपने हाथ की किताब पढने लगा। उसका बांया हाथ बाईं ओर कुरसी के नीचे लटकता था। यह सिंह उसी हाथ के पास मुँह किये बैठा था और धीरे धीरे उसका हाथ चाटता जाता था।

उसके स्वामी की कुछ भी उधर दृष्टि न थी यहां तक कि उसे हाथ चाटते चाटते लगभग आधा घण्टा होगया। तब उसकी जीभ के रगडेसे हाथ में कुछ रुधिर चमचमा आया और सिंह की भी जीभ में कुछ स्वाद लगने लगा। जब इसका हाथ कुछ छर छराया तो उसने अकस्मात् अपना हाथ खींचा उस समय पहिले तो सिंह ने जीभ की अलसेट से हाथ खींचने न दिया और इसने झटका तो सिंह गरज उठा। इसने देखा कि सिंह की त्यौंरी बदली तब यदि उसी समय घबरा फिर हाथ खींचते तब तो समाप्त थे पर उन्हों ने धीरज को स्थान दिया और हाथ वैसेही सिंह-के मुँह के पास रक्खा और किताब की ओर मुँह कर अपने नौकर को पुकारा। नौकर के सामने आतेही उस सिंह के प्रेमी ने कहा कि चटपट जाओ और बङ्गले में भरी हुई दुनाली बन्दूक धरी है सो लाकर मेरे पीछे-से झुककर इस पाजी के पेट में और खोपडे में मारो नहीं तो दो मिनट में यह मुझे खाजायगा। वह नौकर भी रंग देख कांप उठा पर धीरज धर चट घर में गया और बन्दूक ले आया। कदाचित् देर तो आधीही मिनट की हुई होगी पर सब कोई समझ सक्ते हैं कि जिसका रुधिर सिंह चाट रहा था और जिसे पलक पलक मौत का भय पूरा पूरा होता था उस बिचारे को वह अल्प क्षण भी कितना बडा और कडा जान पडा होगा।

इतने में उस चतुर नौकर ने आडही आड समीप आय हाथ डेढ हाथ-की दूरी से सिंह के पेट पर ऐसी गोली लगाई कि वह मछली की भांति भूमि में लोट गया और दूसरी उसके कपाल पर ऐसी दी कि विचारे ने सांस तक न लिया॥

देखिये यदि यह विचारा पहले ही घबरा जाता तो प्राण जाने में क्या सन्देह था॥

पुराणों में जितनी नल, राम, युधिष्ठिरादि की कथा हैं उनमें आदि से अन्त तक धैर्य का प्रकरण भरा है और जितने आज तक एक से एक पराक्रमी और बीर, प्रतापी, तथा यशस्वी पुरुष होगये हैं उनकी उन्नति का प्रधान कारण धर्यही मिला है॥

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ क्षमा ॥

क्षमा कुछ साधारण गुण नहीं है। जिस पुरुष में क्षमा नहीं वह अति क्षुद्र समझाजाता है। जो ऐसे होते हैं कि किसी से कुछ अपकार की शंका हुई कि उसका अपकार करने को तैयार, किसी के मुंह से भ्रम से भी कुछ कड़ा शब्द निकला कि आप गालियों की वर्षा करने लगे। किसी ने अल्प अपराध भी किया तो उसपर टूट पडे वे अति तुच्छ समझे जाते हैं। जिन को क्षमा नहीं उनके लडकेवाले दुर्बल होते हैं क्योंकि वे बात २ में घुसे और घुडके जाते हैं और बात बात में मार खाते हैं। उनसे जी खोल कर कोई बात नहीं करता क्योंकि यह सबको आशंका रहती है कि बातों में कोई अनुचित न होजाय। जिसको क्षमा नहीं है उससे कितनेही काम चट पट में ऐसे अनुचित बन जाते हैं कि पीछे जन्म भर उसका पछतावा रह जाता है। क्षमा रहित पुरुष राज सभाओं में तो कभी टिकही नहीं सकते। जैसे किसी कटोरेमें जल हो तो उस में जहां कुछ और पदार्थ डाला कि जल उबला यह स्वभाव अक्षम पुरुषों का है समुद्र में पहाड आपडे तो भी उसका बढना घटना फैलना कुछ नहीं विदित होता, यह

स्वभाव क्षमावान पुरुषों का है। जैसे गजराज के पीछे कुत्ता भूँकता चलै और गजराज उस पर ध्यान न दे तो उसका कुछ नहीं बिगड़ता वैसे ही क्षमा शील पुरुष यदि तुच्छों की बक बक पर ध्यान न दें तो उनकी क्या हानि है ? यदि कोई अपने को गाली दे तो भी यों समझ लेना कि—

जाके ढिग बहु गारी ह्वै हैं, सोही गारी दै है।
गारी वारो आप कहै है, हमरो का घटि जै है॥

कोई कोई समझते हैं कि "जो हमको गाली देता है उसे यदि हम गाली न दें तब तो हमारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी" पर यह उलटी ही बात है। तुच्छों की गाली पर गाली ही देने से टंटा बढता है और चुप रहने से कोई जानता भी नहीं कि किसको गाली दी।

एक समय वशिष्ठ और विश्वामित्र में बड़ा झगड़ा चला, झगड़ा तो इस बात का था कि विश्वामित्र क्षत्रिय थे पर बहुत तप करने के कारण कहते थे कि हमें सब कोई ब्राह्मण कहा कीजिए पर यह बात उस समय के ब्राह्मणों को पसन्द न पडी वशिष्ठजी ने कहा कि आप क्षत्रिय हैं पर तपस्वी हैं इसलिए राजर्षि कहला सकते हैं परन्तु ब्रह्मर्षि नहीं, इसी बात पर विश्वामित्र ने वशिष्ठजी से शत्रुता बांधी विश्वामित्र बार २ अधिक २ करके आते थे और वशिष्ठजी से झगडा करते थे पर वशिष्ठजी उनपर क्षमा ही रखते थे पुराणों में ऐसा लिखा है कि एक बार विश्वामित्र बहुत तप करके आये और वशिष्ठ को ललकार बोले कि हमें ब्राह्मण कहो नहीं युद्ध करो वशिष्ठजी एक दण्ड लेकर कुटी के बाहर खड़े होगए, विश्वामित्र उन पर बहुत से शस्त्र अस्त्र चलाने लगे परन्तु वशिष्ठ जी ने अपने तपोबल से सब को उसी दण्ड पर रोका, जब विश्वामित्र कोटि कला कर हारे, तब वशिष्ठ जी ने कहा कि भाई और कोई शस्त्र अस्त्र बाकी हो तो चलालो फिर हम भी आरम्भ करेंगे। तब विश्वामित्र ने हाथ जोडे और वशिष्ठजीने क्षमा किया। कालान्तर में वशिष्ठजी एक समय अपनी कुटी में बैठे आंख बन्द किये ध्यान कर रहे थे और अन्धेरी रात थी चारों ओर

मारे अन्धकार के ऐसा जान पडता था कि काजल की आंधी चल रही है अथवा स्याही की वर्षा होरही है। काले मेघ मण्डल से तारों का भी प्रकाश बन्द होगया था। उस समय विश्वामित्र के चित्त में यह बात आई कि जितने ब्राह्मण हैं वे वशिष्ठ ही पर ढलते हैं और कहते हैं कि वशिष्ठ ब्राह्मण कहें तो हम लोग भी ब्राह्मण कहें और वशिष्ठ ऐसा दुष्ट है कि चाहे कुछ हो हमें ब्राह्मण न कहैगा। तो इस अन्धेरे में वशिष्ठ का शिर काट डालना चाहिए। यह विचार चोर की भाँति तलवार ले वशिष्ठ की कुटीमें घुसे, दैवात वशिष्ठ की समाधि खुली, वशिष्ठ ने पूछा कौन है? तो विश्वामित्र ने कहा कि तुम मुझे ब्राह्मण नहीं कहते इसलिए मैं तुम्हारा शिर काटने आया हूँ। वशिष्ठ ने कहा कि आपही सोच लीजिए क्या जो पाप करने आप आये हैं ऐसेही ब्राह्मणों के कर्म होते हैं? क्या ऐसेही स्वभाव के भरोसे आप ब्राह्मण बनना चाहते हैं? यह सुनतेही विश्वामित्र लज्जित होगए, और तलवार दूर फेंक प्रणाम कर बैठ गये और अपने अपराध क्षमा कराने लगे, वशिष्ठजीने कहा कि हमें कुछ बदला नहीं लेना है कि आप क्षमा मांगें पर देखिए जिस समय आप अहङ्कार से ऊँचे बनने का डङ्का दे युद्ध का डौल बांधते थे तब सबकी दृष्टि में आप छोटे जँचते थे और अब आप हाथ जोड़े अपने को तुच्छ समझे बैठे हैं तो हमारी दृष्टि में ऊँचे जान पड़ते हैं। इस समय आपके हृदयमें अहङ्कार नहीं क्रोध नहीं, छल नहीं, ईर्षा नहीं, मद नहीं, मत्सर नहीं, बस ऐसा हृदय रखिये तो आप सबसे बड़े हैं विश्वामित्रजी को यह सुन बहुत बोध हुआ और वशिष्ठजी का इतना भारी क्षमा गुण देख सबको आश्चर्य हुआ,। इस लिए यही चित्त में जमा के रखना चाहिए कि--

दो०—क्षमा सकल गुण में बडो, क्षमा पुण्य की मूल।
क्षमा जासु हिरदे रहै, तासु दैव अनुकूल॥
अपराधी निज दोष तें, दुख पावत बसु जाम।
क्षमा शील निज गुनन तें, सुखी रहत सब ठाम॥

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ उपनयन ॥

हिन्दू धर्म्म में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के लिये उपनयन भी एक प्रधान धर्म्म है। उपनयनही के कारण ये लोग द्विजाति कहलाते हैं क्योंकि एक जन्म तो माता के गर्भसे और दूसरा जन्म उपनयन संस्कार समझा जाता है। उपनयन संस्कार में कोई यद्वा नहीं और उपनयन संस्कार में कोई अथवा नहीं। यहां तक मनुने लिखा है कि "इतऊर्द्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः" नियत समय पर उपनयन न करने ही से मनुष्य पतित होजाता है और समय बिता के करने से फिर प्रायश्चित्त करना पडता है। देखने में तो यह छोटासा नौ तार का डोरा है पर सब विद्या और मतों का मूलभूत वह, उपनयन बिना काम में नहीं आसक्ता। अर्थात् उपनयन के अनन्तरही वेदारम्भ की विधि है और उपनयन के अधिकारी न होने से ही शूद्रों के मुख कमल पर वेद के भौंरे का झङ्कार नहीं होता।

इसी उपनयन के लिये उपनयन के अनधिकारी लोग मरे जाते हैं, कि "हाँ" हमको उपनयन नहीं। कोई २ गम्भीर हृदय होंतो उनके लिये हम लोग नहीं कहते परन्तु प्रायः ब्रह्म समाज और आर्य समाज में छोटेही वर्ण वालों ने अधिकांश आश्रय लियाहै और "जनेऊ जनेऊ" ले के भारी हल्ला होरहा है। ब्रह्मसमाज ने तो द्विजाति अद्विजाति को एक तराजू पर तोलने का यह ढङ्ग निकाला है कि सबको वे जनेऊ का नङ्ग मुनङ्गा कर बन्धन रहित कर डाला। क्या जानें क्या समझके उन लोगों ने अभी तक बनर्जी मुकर्जी, आदि ब्राह्मण वंश बोधक नाम नहीं बदले हैं परन्तु शूद्रसे ब्राह्मण तक सब धान बाईस पसेरी होरहे हैं॥

आर्य समाज वालों ने जनेऊ कुछ अच्छी समझी सो हेतु वाद के झोक से एक बेर विचारी सूथन के ईजारबन्द में फँसा दी कुछ समझ बूझ तोड के न फेंकी। पर इतने से जिन महाशयों का प्रधान मण्डल इस समाज में आ फँसा है और जिनके ही द्वारा समाज का श्वेत

कृष्ण रूप झलकता है उनको द्विजों से कम रखने में उनका कैसे उत्साह बढेगा यह विचार सबकी समता के लिये उन्होंने सबको उपवीत का अधिकार दिया और सबको इसी के द्वारा वैदिक बनाना चाहा ॥

अब आप लोगों को विस्तार से कुछ नहीं कहना है। आप लोग स्वयं समझ गये हैं कि यह जनेऊ किस बड़े मोलकी चीज है। इसी जनेऊ के छीनने को मुगलों ने सैकडों बेर रुधिरों की नदियां बहाई, और हाडों के पहाड़ चुने और इसी जनेऊ को बनाने के लिये लाखों सिक्ख राजपूतानी और मरहटों ने अपने सिरों को अपनी हथेली पर रख बीररस की वृष्टि की इसी यज्ञोपवीत के विषय में नागेश भट्ट ने बड़ा पोथा बनाया और यह सिद्ध किया कि कलयुग में केवल ब्राह्मण और शूद्र दोही वर्ण हैं इस कारण ब्राह्मण छोड़ और किसी का उपनयन न हो। इसी उपनयन के विषय में काशी के पण्डित घनश्याम जी गौड़ने बडी धूमधाम की सभायें कीं और महाराष्ट्र लोग देखतेही रहे पर उन्होंने सैकड़ों अग्रवाल वैश्य और क्षत्रियों को जनेऊ देही दी। इसी यज्ञोपवीत के विषय पर पण्डित रामिश्र शास्त्री जीने ब्रात्य संस्कार मीमांसा नामक धूमधाम का ग्रन्थ बनाया और जो लोग क्षत्रियों तथा वैश्यों के उपनयन के विरोधी थे उनको चुपकिया, जिसके खण्डन के लिये आजतक किसी के सिर में खुजाल भी न चली। हम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों से कहते हैं कि बाबा अब भी तो समझो, जिस अमृत के लेने को चारों ओर सहस्त्रों कङ्गले झुक रहे हैं और जिसमें केवल विघ्न डालने को बड़े २ राक्षस दांत कटकटाते फिरते हैं वह अमृत की थाली आप लोगों के लिये परोसी है। आप इसे लात मार न हटाइये। आप के कुल में कुछ काल से उपनयन छूटगया हो तो भी हानि नहीं है प्रायश्चित्त करके जनेऊ लीजिये और कुल तारिये ॥

साहित्याचार्य स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास.

॥ प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति ॥

इस लेख में इस बातका विचार किया जायगा कि हमारे प्राचीन लोगों की उन्नति और अर्वाचीन पाश्चात्य लोगों की खोज में बराबरी कहां है और भेदका कहांपर आरम्भ होता है ? जिनका वर्णन रामायण महाभारतादि ग्रन्थों में अलौकिक प्रकार से किया जाता है, सम्भव नहीं कि वे महात्मागण बिना किसी अलौकिक साधन के उन्नति को पागये हों आजकल के पश्चिमी लोग जिन यन्त्रादि साधनों से उन्नति के शिखर पर पहुँचे हैं वे साधन उन प्राचीन महात्माओं के पास नहीं थे ! इससे अनुमान होता है. कि एक ही परिणाम को उत्पन्न करनेवाले दो भिन्न भिन्न प्रकार के साधन अर्वाचीन और प्राचीन लोगों को प्राप्त होंगे ! अब इस बात का विचार करना उचित जान पडता है। कि हमारे उस अनुमान को प्राचीन ग्रन्थों से कितना अवलम्ब मिलता है।

आज कल ऐसी २ अद्‌भुत खोजों का पता लगता है और ऐसी ऐसी युक्तियां निकलती रहती हैं कि उनको देखकर मनुष्यों का मन चकित होजाता है ! निःसन्देह इस समय की खोज और युक्तियां सही हैं, तथा उनका प्रचार करनेवाले सर्वथा प्रशंसनीय हैं । परन्तु आज कल की खोज से जो बातें सिद्ध हुई हैं, अथवा जिनका सिद्ध होना सम्भव है उन बातों को प्राचीन लोग भी भली भांति जानते थे । इसमें कोई शङ्का नहीं है। क्योंकि जिस प्रकार इस समय के पश्चिमी लोग अपने मनोगत कार्यों को सफल कर लेते हैं, वैसे ही हमारे पूर्वजभी अपने इष्ट हेतु को सिद्ध कर लेते थे, परन्तु दोनों के मार्ग अलग २ हुए । आजकल के मनुष्योंको एक घण्टे में दस या बीस कोस जाता हुआ देख कर आश्चर्य हुआ करता है, परन्तु पहिले महात्मा भी अल्प काल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते थे, इसमें कोई शङ्का नहीं कि बिना यन्त्र का और बिना तारके तार का आविष्कार करनेवालों का बारम्बार बखान किया जाता है, परन्तु प्राचीनकालके विद्वानगण इन यन्त्रों के न जानने परभी

हजारों कोसपर रहते हुए मनुष्य का वृत्तान्त पलक मारने में जान लेते थे। परन्तु दोनों का मार्ग अलग २ था, इस पुराने और नए मार्गको अलग २ करके देखनेपर यह ज्ञात होजाता है कि इस समयका मार्ग भौतिक है। और उस समयका मार्ग मानसिक था। पानी, पवन, बर्फ, बिजली इत्यादि सृष्टि के जड पदार्थों के गुण धर्म को अत्यन्त सूक्ष्म रीति से अनुशीलन करके पश्चिमी लोगों ने उनपर पूर्ण विजय पाई है, और उन सब पदार्थों को अपना दास बनाकर इच्छानुसार कार्य कराते हैं।

इधर धर्म ग्रन्थों में रावणादिक दैत्यों के और राक्षसों के वैभव वर्णनसे बोध होता है कि उनके घरों में पवन देवता बुहारी देते थे और मसालची का काम सूर्य को सौंपा गया था, पुराणों के इस सत्य वर्णन को जो नई रोशनी वाले कल्पना प्रसूत बताया करते हैं उनको उचित है कि आज कल के विज्ञान को देख कर उन सब बातों को यथार्थ जानें। आज कल के विज्ञान को पञ्च महाभूतों के ऊपर स्वत्व प्राप्त कर लेने का फलही समझना चाहिए।

इस समय के विद्वानों ने इन महा भूतों के गुणधर्म को खोज करनेमें अपना सारा सामर्थ्य लगा दिया। परन्तु हमारे पूर्वजों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति मानसिक गुणधर्मकी खोजमें व्ययकी थी और उन शास्त्रोंके अभ्यास से मानसिक सामर्थ्य को जान लेने के कारण उस शक्ति के बलसे इस समय की अपेक्षा सौ गुने व हजार गुने आश्चर्यकारक कार्य कर गए हैं। पूर्व कालीन महात्मागण योग का ही पदार्थ विज्ञान शास्त्र समझतेथे। पदार्थ विज्ञान शास्त्र तथा आधिभौतिक सृष्टि से व्यवहार रखनेवाले इतर अर्वाचीन शास्त्र निम्न श्रेणीके माने जाते थे। परन्तु योग शास्त्र उच्च श्रेणी का समझा गया है। पदार्थ विज्ञानादिक शास्त्रों से ईश्वर बहुत ही दूर है। परन्तु योग शास्त्र ठीक २ परमेश्वरके निकट ही अपने साधक को पहुंचा देताहै। यदि परमेश्वर को कोई कार्य करना होता है तो वह लोहे के बडे २ डन्डों पर फौलादी

पहियों कों जोर के साथ नहीं घुमाता है, मनमें विचार करते ही वह अपने कार्यको पूर्ण कर लेता है, और यही तत्त्व योगशास्त्र का अनुसरण करता है। इसही कारण से यह शास्त्र ईश्वर के निकट का शास्त्र माना गया है। हमारे पूर्वजों ने इस शास्त्र का अभ्यास दीर्घ काल तक किया था, यह शास्त्र अधिक व्यापक है, इस एकही शास्त्र को सीख लेने से समस्त शास्त्रों के सीख लेने का फल होता है। यदि कोई रेलगाड़ी और ऐंजिन बनाना जानता हो तो उसको बिना सीखे हुए मार्कोनी के अभ्यास किये तार का काम कदापि नहीं आसकता। परन्तु जिसके मनमें योग के द्वारा सामर्थ्य उत्पन्न होगई है, वह पलभर में सहस्रों कोस जासकता है और घर बैठे ही बैठे एक क्षण भर में सहस्रों कोस की दूरी का वृत्तान्त जान सकता है। इसी से भलीभांति योग शास्त्र की व्यापकता को प्रत्येक मनुष्य समझलेगा, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार के अद्भुत और व्यापक योग शास्त्र को पाकर भी हम हीन दीन से बैठे हुये आज-कल बातों पर आश्चर्य किया करते हैं, कि अमुक ने अमुक यन्त्र निकाला और अमुक ने अमुक कार्य किया। हमारे पूर्वज महात्मा इस योगशास्त्र के बलसे ही बलवान् हुयेथे। यह योगशास्त्र असाधारण शास्त्र है। अतएव इसही कारण से इसमें सब बातों का समावेश होता है। आजकल बहुधा दिल्लगी से यह प्रश्न किया जाता है, कि वेदों में कहीं रेल और तार का भी जिकर है?

उसके उत्तर में निवेदन यही है कि वेदों में रेल तार ही नहीं बरन सब ही कलाकौशल वर्त्तमान है, परन्तु इस कलाकौशल के जानने और देखने के लिये संस्कृत हृदय तथा संस्कृत नेत्रों की आवश्यकता है। आजकल किसी स्टेशन पर खडी हुई किसी आगगाड़ी कोही धूमयान नहीं समझना चाहिये परन्तु आगगाड़ी अर्थात् अति शीघ्रता के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने वाले विशिष्ट साधन का नाम आगगाडी अथवा धूमयान है ऐसा सरलार्थ ग्रहण करने से ज्ञात होता है कि वेद में धूमयान अवश्य है, और वैदिक ऋषिगणों के पास भी निश्चय

इस प्रकार की आगगाडी अथवा रेल गाड़ी थी। इसही भांति की दृष्टि से देखने पर रेलगाड़ी के अतिरिक्त मशीनगन्स (कल से चलनेवाली तोपें) भी हमारे पूर्वजों के पास थीं आजकल की मशीनगन्स में जैसे एकाध पहिया होता है, और उसके द्वारा बहुत से कारतूस एकही टोंटे में होकर निकलते चले जाते हैं, वैसे हीं हमारी मशीनगन्स नहीं बनी थीं, परन्तु आजकल की मशीनगन्स जिस प्रकार अनेक लोगों का संहार करडालती हैं, वैसेही पूर्व कालीन मशीनगन्स भी अनकला गौ का संहार करडालती थी, हमारी पूर्व कालीन मशीनगन्स दुष्ट जनों का संहार करने में नियुक्त थीं पवित्र तेजस्वी, तपस्वी, तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मण उन वैदिक तोपों के गोलन्दाज थे हमारी इन अद्भुत तोपों पर आजकल धूलि पड़गई है, मोरचा लगगया है। इसके अतिरिक्त वैसे गोलन्दाज भी अब नहीं मिलते। इसही कारण से, वह दुष्टजन संहारकारिणी मशीनगन्स इस समय निकम्मी पडी हुई हैं। वेद में विशेष करके अथर्व वेद में अनेक प्रकार के मन्त्र लिखे हैं, पुरश्चरण के द्वारा सिद्ध करने पर वे मन्त्र तत्काल फल देते हैं ऐसे बहुत से मन्त्र हैं। परन्तु केवल रुद्र के कितने एक मन्त्रों का पुरश्चरण फल यहां लिखा जाता है, जिससे यह ज्ञात होगा कि उन मन्त्रों को "हमारी प्राचीन मशीनगन्स" नाम देना कैसा उचित और युक्ति युक्त है।

रुद्र के पहिले अध्याय की १०, ११, १२ इन तीन ऋचाओं का पुरश्चरण करने से "युद्धोपनीताः शत्रवोहीयन्ते" अर्थात् युद्ध करने को आगे खड़े हुए शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं, ऐसा फल कहा है। इसही प्रकार उसही अनुवाक की १३। १४ और पन्द्रह ऋचाओं में भी मशीनगन्स की नाईं अद्भत सामर्थ्य आगे के प्रमाण से विदित होगी।

एताभिरपि संग्रामकाले तैलमेकादशप्रदीपसहस्राई द्रोण्यां प्रक्षिप्य तत्र देवमावाह्य लोकपालैः सहाराध्य स्पृष्ट्वा तैलं सप्तदिनानि प्रतिदिनमष्टसहस्रं जपेत्।

तेन सिद्धतैलेन प्रदीपानेकादशसहस्रमारोप्य शत्रुराज्ये प्रत्यासन्नेराजानं विना सेनानीः पुरोगच्छेत् । दृष्ट्वादीपज्वालां शत्रुसेनानावतिष्ठते । एतत्प्रभावादेवशत्रवो विनश्यन्ति । अन्यदपिएताभिरेवारातिनगरे सिद्धवेषधारिणो ब्राह्मणाः शक्तामन्त्रसिद्धाः शत्रोरभिचारं कुर्युः राजायदुपयुंक्ते वस्तुतदेताभिः स्पृष्ट्वा चदृष्ट्वा च स्पर्शनदर्शनायोग्यं तन्मुखाच्छ्रुत्वा अभिचारो स्त्विवतिजपेयुः । मन्त्रान्तेऽन्यदपिशंकुनिधाय नगरचतुष्पथे देवालये देवारामे सालखातयोरन्यतरस्मिन्नपि नगराङ्गभूते सहस्राभिमन्त्रितंखनेयुः । तन्नगरं शम्भुकोपात्संवत्सरत्रयान्नश्यति व्याधिना"

इस मन्त्र के पुरश्चरण की सामर्थ्य उपरोक्त संस्कृत में इस प्रकार से कही है कि इस मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित तेल के उजियाले को देखते ही शत्रु की सेना अपने सामने खड़ी नहीं हो सकेगी, तैसेही जिसने इस मन्त्र को सिद्ध कर लिया है उस सिद्ध वेषधारी ब्राह्मण को अभिचार करने के लिए शत्रु के राज्य में भेजे यदि वह ब्राह्मण अभिमन्त्रित करके कोई कील शत्रु के राज्य में गाड़ दे तो ३ वर्ष के भीतर ही भीतर वह नगर किसी न रोग से विध्वंस हो जायगा।

रुद्र के दूसरे समस्त अनुवाक के पुरश्चरण का फल इस प्रकार से कहा है कि--

शत्रूणां मारककामो रक्तसर्षपांस्तैलाक्तानयुतं जुहुयादृतावृतौतेन कर्मणा शत्रवो नश्यन्ति। युद्धे प्रत्यासन्ने देवस्यपरिमांजिष्ठं पटमारोप्य स्वयं शुद्धोभूत्वा दक्षिणहस्तां-

गुष्ठेन एतद्गच्छत्यनुवाकान्तेवदन्नष्टसहस्रं पञ्चदिनानि-शपेत्। शत्रुणांराजा स्थानाद्गच्छति।

भावार्थ ऐसा है कि इस पुरश्चरण को करके लाल सरसों को तेल में भिजो लेवे और उससे हवन करै तो शत्रु का नाश होता है। तैसेही सरसों की पिट्ठी को महादेवजी पर लेप करै और शत्रु का नाम लेके आठ हजार जप करनेसे शत्रु को भयंकर ज्वर आवेगा और उसी ज्वर से शत्रु नष्ट होजायगा। इसी भांति से शत्रु के राजा पर इस मन्त्र के जप का कुछ प्रयोग करने से वह निज स्थान से भ्रष्ट होता है इस दूसरे अनुवाक की नांई तीसरे अनुवाक का भी यही फल है यथाः—

राजा चान्यतरस्य राष्ट्रस्यरोगबाहुल्यमिच्छन्नाम्नेव वागहौदिभिर्मांसैर्लक्षं होमः कार्यः। रिपुराष्ट्रं समुद्दिश्याभिचारं करोमि फट् स्वाहेति। एवंमांसहोमेनरिपुराष्ट्रं प्रजाश्चशुष्यन्ति। अथवैकङ्कतसमिद्भीरक्त सूत्रवेष्टिताभिः शतसहस्रंहोमः। अनेनशत्रोः महाज्वरो भवति। परराष्ट्रजनैरुपभोग्यं जलादिकं वस्तुस्पृष्ट्वा वीक्ष्यवाशतसहस्रं जपं कुर्यात्। यस्तद्वस्तूपयुंक्ते ससम्वत्सरान्नश्यति। श्मशानाग्नावर्कसमिद्भिरासम्वत्सरं जुहुयात्। तेनशत्रुनगरं व्याधिनानश्यति। अकारण्यं भवति। अनेनैव चामुण्डालये दक्षिणाभिमुखोभूत्वा माषतैलाक्तैरेकादशसहस्रं जुहुयात्। परराष्ट्रप्रजाच मसूरिकाभिर्बाध्यते। अनेनैवापरमुच्यते। पश्चिमद्वारेशम्भोरालये देवस्य पादपीठे अग्निमपस्मारिणं स्पृष्ट्वा सप्तसहस्रं जपेत्। शत्रुराज्यंस्मृत्वा मन्त्रान्ते प्रज्वलज्ज्वालाप

स्मारिन् इति वदेत्। एतेनराजशत्रोरपस्मारोभवति। अनेनैवसर्वपदगं राजानंस्मृत्वा शुद्धतण्डुलकृतपिष्टैराहुतिमात्रैः शतसहस्रहोमेन राजयक्ष्मोत्पद्यते। तेनविनश्यति।

पश्चिम वालों की आविष्कार की हुई मशीनगन्स जैसे भांति २ की होती हैं वैसेही हमारी प्राचीन गन्स भी भिन्न २ प्रकार की हैं। इस तीसरे अनुवाक की मशीनगन्स का प्रभाव इस प्रकार का है कि इसके द्वारा शत्रु का देश और उसकी प्रजा रोग से सूख जाती है और शत्रु के अङ्ग में महाज्वर उत्पन्न होता है। शत्रुके देश की जलादि वस्तुओं को देख के या स्पर्श करके यदि इस मन्त्र का एक लक्ष जप किया जाये तो उसका व्यवहार करने वाला एक वर्ष में नष्ट होता है। इसी मन्त्र के एक दूसरे साधन से शत्रु के नगर का नाश व्याधि से होता है और उस देश में रोग का वास होजाता है तथा वहां आक का वन जमता है। इस मन्त्र से शत्रु के राज्य में मसूरिका इत्यादि रोग फैलते हैं व अपस्मार क्षयी इत्यादि रोग भी उत्पन्न किये जा सकते हैं। पांचवें और छठे अनुवाक के फल भी कुछ इसी प्रकार के कहे हैं यथा—

एताभ्यां संग्रामे प्रत्यासन्ने राज्ञो महानसपक्वान्नेवसोपदंशेन भक्तेन दधिमधुघृताक्तेन प्रतिनमस्कारं एकादश कृत्वा हुत्वा शेषं बलिंभूमौ विधायादाय जलमिश्रं पात्रेण नामभिःप्रक्षिपेत्। सासेनाचिरान्नष्टा भवति एताभ्यामेव राज्ञः सर्वायुधानि स्पृष्ट्वा सहस्रमभिमन्त्रयेत् तेषांतेजो वर्धते एताभ्यामेव परसेनांप्रतिक्षिपेत् साहिसेना चिरं नष्टा भवति। एताभ्यामेव परसेनास्तम्भ उच्यते। अर्कसमिद्भिरादित्यंप्रतिनमस्कारं शतसहस्रंजुहुयात्। परसेनास्तम्भं करोमि स्वाहा। एवं कृते शत्रुसेना स्तम्भिता भवति। एताभ्या-

मेव राज्ञः सर्वाणि भोज्यवस्तून्याभिमन्त्रयेत तान्यमृतानि भवन्ति ॥

इस पांचवें और छठे अनुवाक की मशीनगन से शत्रु की सेना तत्काल नष्ट की जा सकती है। और जहां की तहां स्तब्ध होसकती है। यदि अपने राजा के अस्त्र शस्त्रों को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित किया जाय तो उसका तेज बढता है तथा राजा के भोजन की वस्तु अभिमन्त्रित की जांय तो उनमें अमृत की समान गुण होता है। नवे अनुवाक के चौदहवें मन्त्र का पुरश्चरण फल नीचे लिखे अनुसार है।

राजाशत्रुनाशकामोऽतिशक्तेन ब्राह्मणेन कारयेत् । शत्रुं राजानां महाखदिररूपिणं कृत्वा कस्मिंश्चिद्विविक्ते देशे जलपूर्णकुम्भेदेवतामावाह्य तत्संनिधावग्निमाधाय शमीसमिद्भिः सकण्टकाभिः शतसहस्रं जुहुयात् । रुधिरंच बिडालं प्रशस्तं भवति । ततस्तद्रूपं प्रत्यङ्गलोहशङ्कुभिः प्रतिनमस्कारं खानयित्वा तदुपरिराजा स्वापदं विन्यसेत् । विन्यासकाले गुरुर्जपेत् । ततो राजा ब्राह्मणानां शतं भोजयेत् । ततो देवं विसर्जयेत् । एवं कृते परराजा संवत्सरत्रयान्नष्टो भवति । अन्यच्च तदेव रूपंसशृङ्खलं कृत्वा पूर्ववद्धोमः ततो राजाऽचिराच्छृङ्खली राज्ञोवश्यत्वं व्रजेत् । अन्यदपि वक्ष्यते । शत्रुराजनगरे कृत्रिमवेषधारिणोराजपुरुषाः सब्राह्मणाः सिद्धाः प्रविश्य चतुष्पथेषु देवालयेषु राजसभासु राजद्वारे च लोहशंकूनपिताञ्शतसहस्राभिमन्त्रितान्कृत्वा गुप्तान्यसेयुः । ततो भस्माभिमंत्रितं सर्वतो विकिरेयुः । जलमपि वि-

किरेयुः। एवं कृते तत्पुरमासंवत्सरत्रयान्नष्टं भवति। तत्र खदिरबदर्यादयो वनस्पतयो रोहन्ति। ततो विकृतवेषाः परराजपुरजलाशयेषु कण्ठप्रमाणे जलेतपः कुर्वन्तः सूर्याभिमुखाः अष्टशतदिनानि प्रतिदिनमष्टशतगुणंजपेयुः। जपकाले भगवते हालाहलमेव कराभ्यामभिमन्त्रयेयुः। एवं कृते तज्जलपायिनो वाहनादयो विषदष्टा इव नश्यन्ति।

इस मन्त्र की मशीनगन्सं में जप के कारतूस भरे जाने पर तीन वर्षमें शत्रुका नाश होजाता है व उपरोक्त दूसरी विधि के द्वारा शत्रु का नगर भी तीन वर्ष के भीतर ही भीतर ऊजड़ होता है और वहां खैर तथा बेरी के वृक्ष जम जाते हैं। यदि इसी मन्त्र के द्वारा शत्रु नगर का पानी अभिमन्त्रित किया जाय तो उस पानी को पीतेही शत्रु के हाथी घोडे विष से व्याकुल होकर मर जाते हैं। दशवें अनुवाक की आठवीं ऋचा का विधि पूर्वक पुरश्चरण करने पर उसका पर्यवसान इस प्रकार से होता है। यथा—

वैकङ्कतसमिधा विषतैलाक्तानां श्मशानाग्नौ लक्षं जुहुयात्। शत्रवो नश्यंति। शत्रुनामग्रहणंकृत्वा देवस्य सन्निधौ भस्मपाणिरयुतं जपेत्। तस्यशत्रोर्महाज्वरो भवति। श्वेतसिद्धार्थैरयुतं जुहुयात्। शत्रोर्मसूरिका जायन्ते ताभिरेवम्रियंते। शत्रोर्गृहे क्षेत्रादिषु मन्त्रेणानेनावटं खानयित्वातत्रकल्परोमास्थिशर्करादिकं खातयेत्। तस्यशीघ्रं नाशो भवति।

शत्रु का नाश, शत्रुको महाज्वर, माता इत्यादि रोगोंकी महामारी इत्यादि इस मशीनगन्स के द्वारा उत्पन्न होती हैं। उपरोक्त दसवें अनुवाक

की एकादश ऋचा के पुरश्चरण में एक प्रकार की अलौकिक सामर्थ्य लिखी है। यथा----

सर्वांजेतुकामोऽपामार्गसमिधां कपिलाज्यसिक्तानां शतसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्। एतेनैववराहादयोवश्याभवन्ति। तिरश्चोजेतुकामो बिल्वसमिधां दधिमधुघृताक्तानां शतसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्। अपोजेतु कामो जलस्य मध्ये आत्माग्निमाधाय कपिलेन पयसाशतसहस्रमाहुतीर्जुहुयात्। अद्भ्योभयं न जायते। एवमन्यदपि यद्यज्जेतुकामो भवति तन्नामग्रहणं कृत्वाकापिलाज्येन शतसहस्रैर्जुहुयात्। तत्तत्सर्वंजयति।

इस मशीन की सहायतासे सबपर जय प्राप्त होती है और वराहादिक क्रूर पशुभी वशमें आजातेहैं फिर इतर प्राणियों की तो बातही क्या है। पक्षीगण बश में होतेहैं पानीसे किसी समय भी भय नहीं होता। जिस २ का नाम लेकर यह मन्त्र जपा जाता है, वह सबही साधक के आधीन होजाते हैं। इस प्रकार रुद्र के भिन्न २ मन्त्रों का फल है वरन रुद्र की समस्त एकादशिनी ऐसी ही प्रभावशाली है। यथाः ----

शत्रुमारणकामः पूर्वोक्तविधिना मन्त्रन्यासादि कृत्वा दिक्पालेभ्यो रक्तोदनबलीन्दत्त्वा स्तुहिश्रुतम्। इत्यनेन षोडशोपचारान्कृत्वा रुद्रैकादशिनीमेकादश कृत्वो जपित्वा पुनः स्तुहिश्रुतम्। इति सहस्रंजपेत्प्रत्यहम् सप्तरात्रेण शत्रुबिनाशो भवति। अथ कृत्यामुत्पादयितुकामोरक्तवाससा रक्तोष्णीषो रक्तमाल्यानुलेपनैर्देवमर्चयेत। श्मशानाङ्गणे लोहितशलाकाः प्रादेशमात्रा महा-

तैलाक्ता लक्षं जुहुयात् । "उत्तिष्ठरक्ताङ्गि रक्तन्नेत्रे रक्त-केशि" । कन्यांतां क्षिप्रमेवरुधिरकुम्भेन । पूर्णमांस-मात्रेणतर्पयेत् । अन्यथाकर्त्तारमेवहिंसेत् । सात्वरिता यन्त्रिता वदति । "कंधर्षयामिवदमां ज्ञायते यदि त्रैलोक्यस्थितमऽभ्युत्सादयिष्यामि" ॥ इति तथा चैकैकस्यशरीरस्य ग्रामे नगरे गृहेच प्रयोगः । प्रमुञ्च धन्वन—इति षड्भिरायुधमभिमन्त्र्य संग्रामोपनीताः शत्रवः पलायन्ते । अभिमुखा नावतिष्ठन्ते । 'विकिरिद विलोहित इति यथाशत्रुभिरनेकपर्यायंसुतशत्रुमुखे-जुहुयात् । सर्वे विभग्नमनसोविमुखाः शत्रवश्चपलायन्ते 'नमोहिरण्य' इत्यनुवाकैः कटुतैलाक्तानां राजाभिशङ्कि-तानां सर्षपाञ्जुहुयात् चक्रमुत्सादयति । फट्कारेणदे-वस्योपरिमाला मधोशिरामवलम्ब्य सशिरसा वस्त्रेण रुधिरमाप्लाव्य त्रिकुटकेनाभ्यज्य देवकरांगुलिना रेखामुत्पाद्य शत्रोर्नामानुस्मरञ्जपेत् । सबलसमुदायं शत्रुमुच्चारयति । एवं कृत्स्नं ग्राममुच्चारयति एका-हेन । राजानमहोरात्रेण संपूर्णमर्धदिवसेन क्षत्रियं क्षपयति । दिवसत्रिभागेनवैश्यं चतुर्भागेन शूद्रम् ।

इस विधान में शत्रु के नाश होने का प्रभाव है। उपरोक्त ऋचाओं में कृत्या को उत्पन्न करने का एक विधान कहा है। लाल कपडा लाल फूल, लाल गंध इत्यादि के द्वारा देवता का पूजन करे व श्मशान में लोहे की शलाका से हवन करते हुए 'उत्तिष्ठरक्ताङ्गिरक्त नेत्र रक्तकेशि' इस मन्त्र से उस कन्या को उठाय रक्त मांस से संतर्पित करे । इस क्रिया के द्वारा वह

कन्या उत्पन्न होकर कहेगी कि किसका वध करूं? त्रिलोकी में वह चाहे जहां हो मैं उसको मारडालूंगी यदि ऐसा उग्र देवता सिद्ध होजाय तो उसके सामने आजकल की मशीनगन्स क्या वस्तु हैं ऐसी अमोघ मशीनगन्स के द्वारा शत्रु तत्काल पराजित होता है और गांव के गांव क्षणभर में विध्वंस होजाते हैं। उपरोक्त ऋचाओं से भलीभांति ज्ञात होता है कि मंत्रों के द्वारा इस प्रकार के अनेक और अद्भुत कार्य हो सकते हैं तथा यह भी जाना जायगा कि आजकल की मशीनगन्स से जो कार्य होते हैं उन्हीं कार्योंको हमारे पूर्वज लोग अपनी पुरानी मशीनगन्स से सिद्ध कर लेते थे। बरन नई मशीनगन्स की अपेक्षा पुरानी मशीनगन्स के परिणाम अधिक भिन्न २ हैं। इन पुरानी मशीनगन्स के गोलन्दाज इस समय अपनी विद्या को भूले हुए बैठे हैं और इस बात की प्रशंसा करते हैं कि पश्चिमी लोगों ने एक मिनट में हजारों गोले फेंकनेवाली तोप को आविष्कार करके जगत् को चकित व छकित कर डाला है, परन्तु इस बात का वह विचारे कभी भूल से भी ध्यान नहीं करते कि इसी परिणाम को हमारे पूर्वज लोग मानसिक शक्ति के द्वारा सरलता से करडालते थे। परन्तु प्रत्येक उन्नत राष्ट्र पर या उन्नत होते हुए राष्ट्र पर इसप्रकार की अद्भुत सामर्थ्य का साधन चाहें वह जड़ हो या सूक्ष्म—अवश्य होता है और बिना उसके पास रहे हुए उस राष्ट्र को श्रेष्ठत्व नहीं मिलता है। इस दृष्टि से रखने पर जाना जाता है कि आजकल के उन्नति राष्ट्र जिन साधनों को अपने पास रखते हैं, वैसेही मानसिक शक्ति के अपूर्व साधन हमारे प्राचीन राष्ट्रों के पास थे। ऐसे बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं जिन से यह प्रमाणित होता है कि हमारे पूर्वज तेजस्वी क्षत्रियोंने और ब्रह्मविद्या विशारद महर्षियों ने, घोर संग्रामों के अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों में अपने अपूर्व साधनों का व्यवहार किया था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण पाये जाने पर भी लोग कठिनता से विश्वास करते हैं। पूर्व काल की चरचा से कौनसा लाभ है क्योंकि इस नास्तिकपन के जडवाद के और संसारी सुख भोग के, समय में इस प्रकार के अकाट्य सत्य पर विश्वास कराना बडा कठिन कार्य है। परन्तु

मत धर्म के सिद्धान्त जानकर इन बातों को सत्य मान लेना असम्भव भी नहीं है। इन बातों को सत्य समझ लेने के लिए मन को दृढ करना चाहिए, अन्तःकरण की वृत्ति स्थिर होनी चाहिए। तपश्चर्या का बल बढाना चाहिए और योगबल का संचय होना चाहिए। उपरोक्त कार्य सरल नहीं है। परन्तु इन पुरानी मशीनगन्स की भांति नई मशीनगन्स भी सरलता से साध्य नहीं होसकतीं, इनके साध्य करनेमें भी बहुतसा परिश्रम करना पड़ता है। कल्पना करो कि यदि एक अर्वाचीन मशीनगन्स के बनाने में पांच हजार रुपये लगते हैं तो इन पांच हजार रुपयों में कौनसे मानसिक गुण नहीं आसकते? द्रव्य बडी रकम उत्तम मनोधर्मका एक रूपान्तर समझो। जब कि इस प्रकार की यान्त्रिक मशीनगन्स को बहुत से मानसिक गुणों की आवश्यकता है, तब आपकी यांत्रिक मशीनगन को कितनी अधिक इस द्रव्य की आवश्यकता है सो आपही विचार कर देखिए परन्तु इतने गुण क्वचित् ही प्राप्त होते हैं, इसी कारण बहुतों को यह बात कठिन जान पडती है। परन्तु जहांपर दिव्य योग साधन है और जहां पर इच्छा शक्ति अत्यन्त प्रबल है, वहां पर कोई भी बात असम्भव नहीं है।

इस विचार से प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति का अन्तर भलीभांति से विदित होजायगा। अध्यात्म शास्त्र पूर्व का बनाया और आधिभौतिक सुधार आजकल की दशा है। एक एक युग में मार्ग का महत्त्व होता है। पूर्व युगों में पुण्यात्मा पुरुषों की प्रवृत्ति सूक्ष्म और दिव्य अध्यात्म शास्त्र की ओर थी और वर्त्तमान युग में स्थल व जड आधिभौतिक शास्त्र ओर दृष्टि लगीहुई है। इस युग का नाम कलियुग है।

बलदेवप्रसाद मिश्र.
दीनदारपुरा मुरादाबाद

॥ साकारोपासना ॥

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय ।
तस्मैकृष्णायनमः संसारमहीरुहस्यबीजाय ॥

आजकल जैसा हिन्दूधर्म पर संकट पड़ा है वैसा और किसी समाज पर नहीं प्रथम तो कलियुग में वैसे ही धर्म का एक चरण शेष रहा है, तिसपर, फिर इनदिनों के नवीन सभ्याभिमानियों ने ऐसा भयङ्कर उपद्रव मचारक्खा है, कि जिससे प्राणों को बचाना भी कठिन है, ब्राह्मण से लेकर म्लेच्छादि निकृष्ट जातियों के सब मनुष्य धर्माचारी होने का दावा रखते हैं जिनके बाप दादों नें संस्कृत का अक्षर तक भी न पढा होगा, जिनको काला अक्षर भैंसकी बराबर है वह भी आज चौदह विद्या निधान होकर धर्मकी धूल उड़ा रहे हैं, और यह हिन्दू संतान भेडिये की समान आंखें बन्द करके उनके पीछे २ चलेजाते हैं, जिन्होंने जन्मभर तक अंग्रेजी बूकी और पचास वर्ष तक फारसी छानी, वह भी 'मुह्यन्ति-यत्सूरयः' वेदके तत्त्व प्रकाश कर रहे हैं क्या समय है ? आजकल वही धर्म है, जो हमें पसन्द है, वही शास्त्र है जो हम पढ़ें, वही संसार से उद्धार होने का उपाय है, जो हम लैक्चरदें—वाह क्या धर्म भी 'नानी जी का मीरास' है, हम जानते हैं कि परमेश्वर ने अपना सम्पूर्ण धर्म राज्य इन्हीं वितंडावादी वाक्शूर अदूरदर्शी कूप मंडूक अव्यवस्थित चित्तों के साथ में सौंपदिया है कि तुम जैसा चाहो वैसा करो कदाचित् दिल्ली की वहिश्ती की तरह तीनदिन की बादशाही इन्हें मिलगई है कि खूब कागज के घोडे दौड़ालो, हमें इस बात का बड़ा दुःख है कि जिस धर्म की गति युधिष्ठिर की समान धर्मराज और व्यास, वशिष्ठादि प्रचारकों ने भी ठीक २ नहीं जानी, उसे कलियुग के जीव खिलौना समझ रहे हैं। दिनभर में तीन २ बार धर्म बदलता है, फिर धर्म क्या कुछ भी नहीं, जबानी जमाखरच यहकरो वहकरो पर करते कुछ भी नहीं, न आप न उनके आचार्य्य घडीभर भी शुद्ध चित्तसे धर्मका आचरण

नहीं करते हैं ईर्षा, द्वेष, मत्सर, लोभ, मोह, मद, काम, क्रोध सबके एकाधार चलाजाता है, जो आजकल के धर्म प्रचारक ऋषि मुनि संन्यासी योगी यती पण्डित बन रहे हैं। हां ? किसी ने खूब कहा है ॥ श्लोकः-

> गतागीतानाशं निगमपदवी दूरमगमत्
> विनष्टाःश्रुत्यर्थाः क्वचिदपि पुराणं नसरति।
> इदानीं रैदास प्रभृतिवचसा मोक्षपदवी
> नजाने को हेतुः शिव २ कलेरेषमहिमा ॥

गीता का ज्ञान नष्ट होगया, वेद का मार्ग दूरचला गया श्रुतियों के अर्थ उलट पुलट किये गये, पुराणों से श्रद्धा उठगई अब रैदासी इत्यादि शब्दों से अर्थात् नौकरी सेही लोगों ने मोक्ष समझ रक्खा है। यह नहीं विदित होता कि इसका क्या कारण है. शिव २ यह, सब कलि की महिमा है, इस कारण कलियुग की महिमा को देखकर विचार करना पड़ा है कि ऐसा कौनसा धर्म है कि जिसके करने से वर्त्तमान समय में मनुष्य अपने आप को मनुष्य कहला सकता है, सो बड़े भारी गूढ विचार के करने से यह निश्चय हुआ कि, 'उपासना' के विना कुछ भी नहीं है, केवल उपासना के करने सेही मनुष्य लोक और परलोक का सुख भोग सकता है इस कारण मनुष्यमात्र को अवश्यही ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये, बिना उपासना के जन्म निष्फल है, उपासना के करने सेही हजारों जन्मों के पाप दूर होजाते हैं, यथा-

> कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्त्तिप्रदं नृणाम्।
> प्रयाति विलयंसद्यः सकृद्यत्रानुसंस्मृतेः ॥

कलियुग के अति उग्र पाप पुरुषों को महानरक की पीडा देते हैं, परन्तु वह सम्पूर्ण पाप विष्णु के स्मरण करते ही नाश होजात हैं ॥

**अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहिसः॥
भ० गी० अ० ६ श्लो० ३०॥**

श्रीकृष्ण जी कहते हैं जो दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरी उपासना करता है, उसे साधु [उत्तम] ही समझना चाहिये कारण कि वोह सन्मार्ग में प्रवृत्त होरहा है। और वही सच्ची भावना वाला है॥

अब सर्व साधारण के ज्ञान के लिए उपासना का अर्थ किया जाता है।

'परब्रह्मपरमात्मा के स्वरूपमें लीनहोनेका नामही उपासना है'

वह सगुण और निर्गुण भेद से दो प्रकार की होती है सगुण उपासना वह है कि जिसमें ईश्वर को शुद्ध बुद्ध नित्य सर्वज्ञ सर्वव्यपक कर्त्ता हर्त्ता दयालु सत्य पवित्र सर्वशक्तिमान् मङ्गलमय सर्वान्तर्यामी गुणों से युक्त मानकर आराधन किया जाता है। निर्गुण उपासना वह है कि जिसमें ईश्वर जन्म मरण से रहित निर्विकार निराधार संयोग वियोग में अतीत जान कर आराधन किया जाता है, परन्तु आजकल नई रोशनी के बाक्शूर 'मम मुखे जिह्वा नास्ति' की भांति ईश्वर को सर्वव्यापक मानकर भी साकारोपासना में घृणा उठाकर निराकारोपासना का दावा बांधकर उभयतः भ्रष्ट हो रहे हैं, अतः उनको सचेतन करने के लिए प्रथम वेदादि शास्त्रों से साकारोपासना कथन कर पीछे निराकार उपासना का वर्णन किया जायगा और जो यह मन्त्र पढते हैं कि-

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषीपरिभूःस्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः। यजु० अ० ४० मं० ८

अर्थ-(सः) सो परमेश्वर (पर्य्यगात्) अर्थात् आकाशवत् सर्वव्यापी है (शुद्धं शुक्रम्) अर्थात् शुद्धस्वरूप है, भौतिक प्रकाश विलक्षण ज्ञान-

स्वरूप अथवा अलौकिक दीप्तिमान् परमात्मा है, [अकायम्] सूक्ष्म भूत कार्य लिंग शरीर वर्जित है (अव्रणम् अस्नाविरम्) स्थूल शरीर में वर्त्तमान व्रण और स्नाविर अर्थात् नाडी समूह कर वर्जित है इन दोनों विशेषणों से भौतिक स्थूल शरीर से विलक्षण कहा (अपापविद्धम्) अर्थात् धर्माधर्म रहित इस विशेषण से जीवाभिन्न होने से प्रसक्त जो जीवोपाधि लिंग शरीर धर्म धर्म्माधर्मादि तीनों का निषेध किया है [कवि] अर्थात् सर्वज्ञ है [मनीषी] मन का प्रेरक है (परिभूः) सर्वोपरि वर्त्तमान है, पूर्व उक्त अकायादि विशेषण से भौतिक प्राकृत शरीर का निषेध किया है, इस अभिप्राय का स्वयं ही यह मन्त्र प्रकट करता है [स्वयंभूः] इस विशेषण से [स्वयमेव ब्रह्म रुद्र विष्ण्वादि रूपेण भवति प्रादुर्भवतीति स्वयंभूः] आप ही वह परमात्मा अपनी विचित्र शक्ति से ब्रह्मादि रूप से होता है इस से स्वयंभू है यही अर्थ गीता में स्पष्ट है ॥

अजोपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन्।
प्रकृतिंस्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया। भ० गी० अ०४ श्लो० ६

श्रीकृष्ण जी कहते हैं हे अर्जुन ! मैं अज और अव्ययात्मा और सब भूतों का ईश्वर भी हूँ, तथापि अपनी प्रकृति स्वाभाविक सामर्थ्य को आश्रय कर [आत्ममायया] अर्थात् अपने संकल्प से होता हूँ इससे अवतार सिद्ध है और जब परमात्मा ब्रह्मादिभाव को प्राप्त हुआ तब (याथातथ्यतः) अर्थात् यथावत् [अर्थात्] कर्त्तव्य पदार्थों को [शाश्वतीभ्यः समाभ्यः] दीर्घ वर्ष उपलक्षित प्रजापति मनु आदि हेतुओं से [व्यदधात्] विभाग कर्त्ता हुआ इस में ईश्वर को अकाय लिखा तो इसमें भौतिक शरीर का निषेध है कारण कि इस मन्त्र में 'अकाय' पढने से फिर 'अव्रण' व्रण रहित (अस्नाविरम्) स्नायु रहित इन दो विशेषणों की आवश्यकता नहीं थी जब शरीरं ही नहीं तो, व्रणादिका निषेध क्यों ? इस मन्त्र से ही स्फुट विदित होता है कि व्रण स्नायु आदि के शरीर से

रहित होकर दिव्यमूर्त्ति है कारण कि आगे यह पद पड़ा है कि वह (स्वयं-भू स्वयं प्रकट होनेवाला है, और स्वयं आगे भी वेद उसका आकार प्रकट करता है।

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्ययद्वैश्यःपद्भ्याᳬशूद्रोऽजायत॥
यजु० अ० ३१ मं० ११

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रम से उसके मुख, बाहु, जंघा और चरणों से प्रकट हुए हैं, इससे भी ईश्वर की साकारता प्रकट होती है इत्यादि प्रमाणों से उसकी साकारता सिद्ध है। वेदमें ऐसे बहुतसे प्रमाण मिलतेहैं कि जिससे ईश्वर का मूर्तिमान् होना और उसका पूजन करना सावित होता है।

अन्धं तमः प्रविशन्तियेऽसम्भूतिमुपासते।
ततोभूयइवते तमोयउसम्भूत्याᳬ रताः॥
यजु० अ० ४० मं० ६

जो पुरुष असम्भूति अर्थात् विना प्रमाण प्रतिष्ठा की हुई प्रतिमा का पूजन करते हैं वे अन्धे हैं और नरक में जाकर पडते हैं, उसी प्रकार जो अन्तर्गत नारायण के स्वरूप को नहीं जानते विना जाने ही उपासना करते हैं वह भी नरक में जाकर पडते हैं।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वोयोदेवेभ्योजातोनमोरुचायब्राह्मये।यजु०अ०३१मं०२०

जा ब्रह्मरूप परमेश्वर सूर्य चन्द्र इत्यादि देवताओं को अपना प्रकाश देता है, जो ब्रह्मा आदि देवताओं का हिती और पूज्य है, जो ब्रह्मा आदि देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुआ है उस ब्रह्मरूप परमेश्वर को नमस्कार है।

नमोहिरण्यबाहवेसेनान्येदिशांचपतयेनमोनमः अ. १६मं१६

हे परमेश्वर ! आपकी भुजा स्वयं प्रकाशवान् हैं और सम्पूर्ण संसार को धर्ममार्ग में चलानेवाले दिग्दिशाओंके पति जो आप हैं सो आपको नमस्कार है।

उक्त मन्त्र में बाहु शब्द से प्रत्यक्ष ईश्वर का साकार होना सिद्ध है॥

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूवह तस्य रूपं प्रति चक्षणाय।
इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपं ईयतेयुक्ता ह्यस्य हरयःशतादश॥
ऋग्वेद मं० ६ अ० ४ सूक्त ४७ मं० १८॥

परमात्मा अपनी माया को ओंकाररूप करके अनन्तावतारादिरूप अपने प्रकट करता हैं और अपने रूप की बोधन (पहिचान) के लिए रूप के प्रति अपनी सामर्थ्य सहित विद्यमान होकर उन रूपों के सदृश अपना रूप प्रकट करते हैं, वे अवतार संसार के दुःख हरने को हरिनाम हैं, सो अनन्त हैं जिसमें से दश अवतार अधिक प्रसिद्ध हैं उपरोक्त मंत्र की व्याख्यारूप बृहदारण्य उपनिषत् अ० ४ ब्रा० ९ से भी दर्शित है।

अयं वैहरयोऽपवैदशचसहस्राणिबहूनिचानंतानिच।

यह हरिनाम परमात्माही अवतार रूप हैं--वे अवतार दश हैं शतशब्द बहुत्व का बोधक है, इससे सहस्र तथा बहुत और अनन्त अवतार हैं—

विचारना चाहिए कि उक्त मन्त्रों से ईश्वर का साकार स्वरूप तथा मत्स्यादि दशावतार तथा चतुर्विंशत्यवतारोंका होना भली प्रकार से प्रकट हुआ और इन्द्रादि तेंतीस किरोड देवताओं का होना और उनमें ईश्वर का तेज व्याप्त होने से सम्पूर्ण सामर्थ्य का होना भी भली प्रकार से दिखाई देता है इस कारण साकारोपासना वेद के अनुकूल है।

और युक्तिसे भी सिद्ध है यह युक्ति केवल उन पुरुषों की युक्तिको खण्डन के लिए और आस्तिक पुरुषों की भावना को दृढ करने के लिए प्रकाश कीजाती है॥

जिनकी यह प्रथम ही हठ है कि ईश्वर निराकार है उसका साकार होना युक्ति से बाहर है वह जरा नीचे लिखे हुए लेख को संच्चे दिल से पढ़ें ।

ईश्वर निराकार है, परन्तु जैसे निराकार क ख आदि शब्दों में सुभीते के लिये आकार कल्पित किया जाता है जैसे देश भेद से एकही ककार में पृथक् २ आकार मानेगये हैं, वैसे उपासकों के भेद से एकही परमेश्वर में हिरण्यगर्भ, चतुर्भुज, नीलकंठ और अष्टभुजी आदि आकार कल्पना किये जाते हैं ।

यद्यपि ईश्वर में चतुर्भुज आदि आकार कल्पित हैं परन्तु वह ऐसे कल्पित नहीं है कि जैसे कोई अपनी भ्रान्ति से आकाश में पुष्पों की कल्पना करे, और ऐसे भी कल्पित नहीं हैं कि जैसे ककार आदि वर्णों-के आकार कल्पित हैं, वह ऐसे कल्पित कियाजाता है कि जैसे स्वच्छ पत्थर में गौ आदि की मूर्तियें कल्पित हैं, वह इस प्रकार कल्पित हैं ।

देखिए जरा विचारने का स्थान है कि एक साफ बड़े भारी पत्थर को अब कोई अपने आगे रखता है उस समय उसमें कुछ भी आकार उसको नहीं दीखता, अब यदि कोई वैज्ञानिक शिष्टजन उसको कहे कि 'इस प्रकारमें' अत्यन्त सुन्दर दो गौ तीन हाथी एक घोड़ा और सुन्दर २ बेल बूटे विद्यमान हैं तो वह उसका कहना कभी सत्य नहीं मानेगा, वैसेही समझ कर और भी हजारों आदमी देखें तो वह भी उस पत्थर को सफाही कहेंगे, कारण कि उस पत्थर में कुछ भी चिह्न नहीं दीखता है जब तक उसकी वही दृष्टि बनी है तब तक वह किसी के कहने पर विश्वास नहीं करेगा ।

जबतक आप संग तराशी के काममें चतुर नहीं होता वा वैसे चतुर का सङ्ग नहीं करता तबतक ही यह दशा है, फिर जब उस कार्य में चतुर हुआ तो दश बीस अधिक रंग की तस्वीरें उस पत्थर के भीतर से स्वयं निकाल सकैगा, यदि कम चतुर हुआ तो उस पत्थर में से उक्त मूर्तियों का तो निकालना दूर रहा, बरन उनका अनुमान होना भी महा कठिन है, तात्पर्य यह है कि उस विद्या में बिलकुल अज्ञान होने के कारण एक मूर्ति का भी दर्शन वा आविर्भाव नहीं करसकता ॥

अच्छा अब दूसरा जो उस कार्य में नियुक्त है, जिसने कई बार अनन्त पत्थरों में से सहस्रों मूर्त्तियें निकाली हैं और प्रत्यक्ष साफ पत्थर में से निकाल रहा है उससे पूछा जाय कि आपने उक्त तस्वीरें जो इस पत्थर में से प्रगट की हैं वह कहां से आईं ।

यदि सङ्गतराश कहै कि हमने अपने हाथ से निकाली हैं तो हाथ से तो केवल उसके ऊपर का हिस्सा कुछ २ अलग किया है परन्तु मूर्त्तियें कहां से आईं ? यहां पर अन्तमें यही कहना पड़ैगा कि मूर्त्तियें तो पत्थर के भीतरही वर्त्तमान थीं. परन्तु मैंने अपने ज्ञान विचार से उन्हें कुछ प्रगट किया है तो अब उसी कारीगर की जिह्वा से सिद्ध होगया कि पत्थर के भीतर सेही वर्त्तमान मूर्त्तियें बुद्धि विचार के बल से उत्पन्न हुईं, लीजिये अब सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर देखिये तो सही कि उन विद्यमान मूर्त्तियों के प्रगट होने के प्रथम कारीगर की मानसिक कल्पना अवश्य थी अर्थात् प्रथम उस पुरुष ने उन २ मूर्त्तियों का चिन्तवन किया तो फिर उनको पत्थर से निकाला, यदि वह एकाग्र चित्त से चिन्तवन न करै तो मूर्त्ति का प्रादुर्भाव होना दुस्साध्य है ।

अब यह बिचारना चाहिये कि जब कारिगर गौआदि मूर्त्ति का प्रादुर्भाव करसकता है तो क्या उपासक जिस प्रकार से चिन्तवन करैगा उसी प्रकार सेही चतुर्भुजी आदि मूर्त्ति के प्रगट होने में कोई सन्देह रहेंगे ? नहीं नहीं कदापि नहीं ।

अब यहां पर यह भी साबित होगया कि साकारोपासना वेदानुकूल और युक्तिसिद्ध है, परन्तु है सरल, बहुत समय तक साकारोपासना करके पुरुष निराकारोपासना का अधिकारी होसकता है, जबतक साकारोपासना में तत्पर न हो, तबतक निराकारोपासना का दावा बांधना महा अनर्थ का कारण है, परन्तु साकारोपासना को करते २ अंतिम निराकारोपासना में प्रवृत्त होना योग्य है इसकारण निराकारोपासना का वर्णन किया जाता है निराकारमें मनका लगाना योग की रीति से योग्य है, सो शुद्ध और पवित्र होकर स्वच्छ एकान्त स्थान में स्थिरता से बैठै फिर सत चित् आनन्द